लेखक—

श्रीयुत् कमलापति प्रधान

एम. ए. एल. टी.

प्रकाशक—

हिन्दी प्रकाशन मन्दिर

बनारस

प्रथम संस्करण
१ सितम्बर ५२



मूल्य
१॥।=)

# हमारे प्रकाशन

| पुस्तक | लेखक |
|---|---|
| और सुबह हो गई | श्रीयुत् गोविन्दसिंह |
| थपेड़े | ,, |
| बदनाम गली | ,, |
| भूखा इन्सान | श्रीयुत् ओमप्रकाश |
| पहाड़ी के उसपार | ,, |
| सुलझन | श्रीयुत् कमलापति प्रधान एम. ए. एल. टी. |
| अधूरी तमन्ना | श्रीयुत् सोमनाथ |



प्राप्ति स्थान—

उदय प्रकाशन मन्दिर

बनारस

मुद्रक—

गोपाल प्रेस, जालिपादेवी, काशी

# [ १ ]

दूर, बहुत दूर,—नगर के चहल-पहल तथा अशांत वातावरण से बहुत दूर—उस छोटे गाँव का दृश्य देखते ही बनता है। कहीं झरनों के सीकर हवा के सहचर हो दग्ध तथा अशांत हृदय में भी आनन्द का संचार कर जाया करते हैं। वृक्षों पर आसन जमाये विहंग मंडली का कलरव भी किसी प्रकार कम आनन्ददायक नहीं। प्रत्येक वस्तु में नूतनता तथा उल्लास है। यहाँ पाकेट-मार नहीं धोखेबाजी नहीं तथा बेइमानी नहीं! क्या ही सुहावना वातावरण है इस गाँव का!

यद्यपि यहाँ गगन-चुम्बी ऊँची अट्टालिकायें नहीं, उनमें लगे हुए बिजली के पंखे तथा बल्ब नहीं, परन्तु क्या गृहस्थों की इन छोटी झोंपड़ियों में कम आनन्द है? क्या शीतल-मंद-सुगंध पवन के झकोरे उन पंखों से कम आनन्ददायक है? नहीं, नहीं, ऐसा सम्भव नहीं।

इसी प्रकार भाँति-भाँति की छटाओं से मुक्त वह गाँव हरिद्वार नगर से सात मील दक्षिण पूरब में स्थित था—क्या ही रमणीयता थी वहाँ—वहीं कल-कल नादिनी धारा रस की सरिता-सी बही जा रही थी—

संध्या के समय अस्तप्राय भगवान् अंशुमाली की किरणें उस सरिता के रेणुमय दूकूल पर पूर्ण रूप से प्रोद्भासित हो रही थीं। निर्मल एवं प्रखर तरंग-माला पर नृत्य करती हुई रश्मि-राशि की शोभा अकथनीय थी। सुगँध शीतल सांध्य समीर के मधुर हिलोरों से महामाया प्रकृति देवी का श्यामल अंचल भी उछल हो रहा था।

तटवर्ती मालती मंडप एक अपूर्व शोभामयी रंग-भूमि के समान था। लतायें आनन्द से झूम रही थीं। विहंग मंडली सुखदायक स्वर से अलाप रही थी। मधुप वीणा बजा रहा था तथा कली चुटकी बजा ताल दे रही थी।

उसी समय उस सांध्य स्निग्ध प्रकाश में—प्रकृति के उस परम रम्य विलास में—बच्चे शोर-गुल मचाते हुए भाँति-भाँति की क्रीड़ाओं में व्यस्त थे। क्रीड़ा-स्थल उनके मकान के सन्निकट ही था अतः उन्हें रात के आने की भी विशेष चिंता न थी।

"...... ... ....!"

रजनी सुन्दरी की विशाल वेणी प्रदीप्त नक्षत्र-राशि से गुम्फित थी—कल-कल नादिनी की शीतल तरग-माला के स्पर्श से शीतल, प्रस्फुटित पुष्पपुंज के परिमल से सुरभित एवं हरिचन्दन के सहज सहवास से मस्त प्रवाहित होता हुआ मन्द समीर उनके खेलों में आनन्द प्रदान करता हुआ 'सोने में सुगंध' का काम कर रहा था।

...बच्चे मस्त थे।

..."खबरदार! बिना खेल दिये जाना न होगा।"—लतिका से कहा नरेन्द्र ने।

"मैं धोखेबाजों के साथ नहीं खेलती, जो करना चाहो, कर लेना

मुझे इसकी चिंता नहीं—" कहती हुई लतिका दौड़ पड़ी अपने घर की ओर।

नरेन्द्र ने भी उसका पीछा किया।

रात्रि के अंधकार के कारण सामने उपस्थित एक गड्ढे को लतिका देख न सकी। अतः उसी में गिरकर उसने चिल्लाना शुरु किया—"नरेन्द्र!"

नरेन्द्र को पश्चात्ताप होने लगा कि आखिर उसने उसका पीछा ही क्यों किया, परन्तु इन सब बातों का भी त्याग कर उसने लतिका को गोद में उठा लिया। अधरों से निकलते हुए खून को पहले तो वह पहचान न सका, परन्तु पुनः उसे इसका ज्ञान हो ही आया। अपने रूमाल से पोंछ उसे गोद में उठा ज्योंही नरेन्द्र चलना चाहता था कि लतिका बोल उठी—"नरेन्द्र, मुझे छोड़ दो—तूने ही मुझे घायल किया है। चलो आज उदय भय्या से कहकर तुम्हें खूब पिटवाऊँगी।"

"देखो लतिका! कहना नहीं। यदि ऐसा करोगी तो मेरे पिताजी भी बड़ी मार मारेंगे और तब हम दोनों का साथ खेलना भी बंद हो जायेगा—" नरेन्द्र ने कहा।

लतिका चुप रही। दोनों हँस पड़े। "लतिका! तुम बड़ी भोली हो।"

"तुम भी बड़े भोले हो।" लतिका ने उत्तर दिया।

## [२]

घर जा लतिका ने अपनी माँ से नहीं बतलाया कि गिर जाने के कारण उसके ओठ फूट गये हैं। चुपचाप भोजन कर वह सो रही।

प्रातः हुआ। लतिका भी हाथ मुँह धो स्कूल जाने की तैयारी करने लगी। माँ ने देखा उसके ओठ फूटे हुए हैं।

"तुम्हें यह चोट कैसे लगी, लतिका!"—माँ ने पूछा।

"कल गिर गई"—सहमते हुए लतिका ने उत्तर दिया।

तत्पश्चात् कुछ खा-पीकर पुस्तकें ले लतिका पाठशाला चल पड़ी। रास्ते में नरेन्द्र भी एक जगह बैठ लतिका की प्रतीक्षा कर रहा था। लतिका के आने पर दोनों बीती हुई घटना के बारे में बातें करते चले जा रहे थे। दोनों कक्षा ४ में पढ़ते थे।

वैशाख की प्रारम्भिक दशा थी। कक्षा ४ की परीक्षा सन्निकट थी। लतिका तथा नरेन्द्र एक साथ पढ़कर परीक्षा की तैयारी करते थे।...उनकी परीक्षा भी सहर्ष समाप्त हो चली। फल भी सुना दिया गया। वे दोनों पास थे। नरेन्द्र सगनाई में प्रथम एवं लतिका द्वितीय थी।

× × ×

समय बीतता गया। वैशाख के बाद ज्येष्ठ आया। भगवान् भुवन-भास्कर की प्रखर किरणें सम्पूर्ण संसार को तवा सदृश जलाने लगीं। लगन की धूम मची थी।

आजकल संध्याकालीन बच्चों के खेल तमाशे प्रायः स्थगित हो चले थे। कारण? यही कि बच्चे बारात देखते, बाजे सुनते एवं नाच से ही प्रसन्नता का अनुभव करते थे।

लतिका पं० उमाकांतजी की एकलौती पुत्री थी। उमाकांतजी गाँव में ही एक रईस के यहाँ, जिनका नाम राजेन्द्रजी था, पूजा कार्य किया करते थे।

पं० जी की गाँव में बड़ी प्रतिष्ठा थी। सभी उन्हें पूजाचार्यजी के नाम से सम्बोधित किया करते थे।

नरेन्द्र भी उपर्युक्त राजेन्द्र बाबू का ही एकलौता पुत्र था। उनके यहाँ धन की कमी नहीं थी।

× × ×

गाँव में ही एक बनिये की लड़की की शादी थी। बड़ी धूमधाम से बारात जा रही थी। बारात देखने नरेन्द्र तथा लतिका भी चल दिये। लतिका के अंग प्रत्यंगों में हल्दी लगी थी तथा हाथ में बँधा हुआ था कंगन। दोनों आनन्दपूर्वक शोभा देख रहे थे।

लतिका की लग्न रखी जा चुकी थी। उसका हल्दी-कार्य प्रारम्भ हो चुका था। उसे घर से निकलना नहीं चाहिये था, पर सप्तवर्षीया बाला के विकल हृदय में इन सांसारिक भावनाओं का ज्ञान ही क्या, उसे पता ही क्या ? वह नरेन्द्र के साथ दृश्य देखने में विभोर थी।

सहसा आवाज हुई धाँय की। लतिका ने काँपते हुए पूछा—"यह क्या नरेन्द्र ?"

"इसी का नाम है उत्सव, लतिके !" ठुड्डी उठाते हुए नरेन्द्र ने कहा।

···दोनों मग्न थे दृश्य देखने में।

क्रोधयुक्त मुद्रा में पं० उमाकांतजी को सहसा अपने सम्मुख उपस्थित देख लतिका डर गई, परन्तु साहस कर तुरत् बोल भी उठी, "बड़ी अच्छी बारात आई है, बाबूजी !"

"बारात अच्छी है या बुरी, इससे तुझे क्या मतलब ? पगली कहीं की, चल घर। बार बार समझाया कि तुम्हारी लग्न रखी गई है, घर से

बाहर न जा, पर मानती नहीं। क्या करूँ, हैरान हूँ, अभी-अभी आँखों के सामने से...''

''क्यों पूजाचार्यजी' बीच ही में बोल उठा नरेन्द्र—''जब लग्न रखी गई हो तो बाहर नहीं जाना चाहिये ?''

''नहीं बेटा! नहीं जाना चाहिये'' कहते हुए पुजारी जी का क्रोध कुछ कम हुआ तथा नरेन्द्र सफल रहा अपनी कार्य-पटुता में।

समयानुसार कोई भी कार्य करने पर आनन्द की प्राप्ति होती है। यदि लतिका भी विवाह योग्य हो गई होती तो कदाचित् वह बारात देखने न जाती। परन्तु अगर ऐसा हो भी जाता तो पिता के द्वारा घर आने के लिये कहने पर उसे कुछ प्रसन्नता ही होती, क्योंकि बातें उसके ही हित की थीं। लेकिन यहाँ उसे विषाद हुआ। विषाद उसे दो कारणों से था—प्रथम तो यह कि उसका साथी नरेन्द्र दृश्य देख रहा था, परन्तु वह असमर्थ थी। द्वितीय यह कि वह उन अच्छे-अच्छे दृश्यों में से कुछ देख चुकी थी, और कुछ नहीं देख सकी थी...।

× × ×

रात्रिकाल में लतिका के घर टोले की प्रायः बहुत-सी स्त्रियाँ आकर गीत गाया करती थीं। कभी-कभी गाँव का चमार भी नगारा बजा जाया करता था। इन गाने बजानों से लतिका और नरेन्द्र दिल-बहलाव कर लिया करते थे।

ज्येष्ठ सुदी एकादशी के दिन लतिका के विवाह के लिये बारात आने वाली थी। पं० उमाकांतजी के पास भी रुपये-पैसे की कमी न थी। अतः बड़ी पर्याप्त तैयारी भी वह कर रहे थे। लतिका सम्पूर्ण तैयारियाँ देख प्रसन्न होती तथा उछलती-कूदती थी। वह भोली थी। वह अभी स्वार्थ भी नहीं पहचानती थी।

बारात आ गई, द्वार पूजा लगी। लतिका आज अलग, एक पृथक कमरे में बिठाई गई थी। वहाँ नरेन्द्र नहीं जा सकता था। यही वह

पहला अवसर था जब कि लतिका ने परतंत्रता का अनुभव किया तथा यह भी जाना कि जिस तरह नरेन्द्र आज मेरी आँखों से ओझल है उसी प्रकार वह कभी भी हो सकता है।

बाराती मंडप में आकर बैठ गये। लतिका का पूरा शरीर कपड़े से ढँककर लाया गया। वर ने उसे सिंदूर लगाया। वर अपनी आँखों से पूर्णतया कार्य लेने में भी उस समय असफल था। वह बेचारा एक टक पृथ्वी पर ही देख रहा था।

लतिका का विवाह राजेश्वर के साथ सम्पन्न हुआ। पर दोनों एक दूसरे को देख तक भी न सके। फिर भी यदि लतिका ने देखा ही होता तो उससे लाभ क्या? वह क्या समझती कि ये हमारे कौन हैं? इनसे हमारा क्या सम्बन्ध है?—इत्यादि...।

विवाह क्या हुआ, एक ड्रामा खेला गया। और आज भी, आश्चर्य है कि इस ड्रामा में सक्रिय भाग लेने वाला एक बहुत बड़ा जनसमूह (जिसमें सुशिक्षितों की भी कमी नहीं) है।

एक पढ़े लिखे योग्य वर का विवाह गूँगी, अन्धी या लंगड़ी से मान्य है, षोडशवर्षीया अस्सी वर्ष के बुड्ढे के हाथों सौंपी जाय—उचित है, एवं दो मिले हुए हृदयों को विलग कर बीच में एक अकाम्य वस्तु रख दी जाय—प्रशंसनीय है—यही है उपर्युक्त ड्रामा का प्रभाव। इसमें भाग लेने वालों के समूह को हम 'समाज' कहते हैं जो पतित होता हुआ भी मान्य होना चाहिये। वाह रे समाज!

# [ ३ ]

प्रसव-कालीन असंख्य वेदना से पीड़ित ऊषा का मुखमंडल लाल हो चला था—उसकी दुर्दशा देख भय के मारे कौवे भी चिल्ला रहे थे। सारा वातावरण अशांत था।

थोड़े ही समयोपरांत—

ऊषा ने पुत्र रत्न प्रसव किया। लोगों ने उसे पुकारा भिन्न-भिन्न नामों से। भानु, सूर्य्य, रवि, अंशुमाली, मारतंड, भुवनभास्कर इत्यादि। उसी समय—परमसुखदायक प्रातःकाल में किसी अबला के विलाप शब्द सुनाई दिये। पवन ने भी इस शब्द का पूर्ण सहयोग दिया। फलस्वरूप मुहल्ले की सम्पूर्ण स्त्रियाँ आकर उसके साथ रोने तथा उसे समझाने-बुझाने भी लगीं। अबला का विलाप मनुष्य-जीवन की असारता प्रकट कर रहा था। मनुष्यों के गर्व उस समय चूर्ण हो रहे थे। बड़ा ही दुःखमय दृश्य था वह! यहाँ तक कि नेत्र उसे देखने में भी असमर्थ रहे।

स्वप्न-संसार में सोई हुई लतिका हँस रही थी तथा स्वप्न में ही उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह नरेन्द्र तथा अन्य साथियों के साथ बक-झक कर रही हो। उसे क्या पता, कि उसकी माँ इस समय करुण-क्रंदन करने में व्यस्त है। माँ पुत्री लतिका को जगाने के लिये आगे बढ़ी परन्तु जगा न सकी।

मुहल्ले में कुचलू की माँ की पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। उसकी अवस्था लगभग साठ की हो चली थी। वह हर कामों में आगे चलने वाली तथा पथ-प्रदर्शक थी।

झट् लतिका के पास जा उसने उसे क्रूरता से जगाया। आज तक

लतिका की ओर किसी ने आँखें भी नहीं उठाई थीं परन्तु दैव जो कुछ कराये सब सह्य ही है।

तुरत् चारपाई से उतर लतिका चारों ओर देखने लगी—देखती क्या है कि बहुत-सी स्त्रियों का जमघट लगा हुआ है। सभी अपने-अपने कामों में व्यस्त है। कोई रो रही है। कोई समझा रही है तो कोई इधर-उधर से कुछ वस्तुएँ ही इकट्ठी कर रही है।

लतिका दौड़कर अपनी माँ के पास जा पूछती है—"रो क्यों रही हो माँ ?"

"बेटी, तुम्हारा और मेरा भाग्य फूट गया।" लतिका पहेली न समझ सकी—पुनः उसने कहा—"जाने दो, फूट गया तो फूटने दो, लेकिन रोना ठीक नहीं लगता माँ।"

उसे क्या पता था कि भाग्य क्या चीज तथा फूटना क्या वस्तु है। उसे क्या ज्ञान कि उसका जीवन-सर्वस्व स्वाहा हो गया। उसे क्या मालूम कि वह अब असहाय हो गई। अब लोग उसे देखने में भी अपशकुन मानेंगे।

"गहने का बक्स उठा लाओ—" कुचलु की माँ ने आदेश दिया विमला को।

"बहुत अच्छा—" उत्तर मिला।

अन्य औरतों ने लतिका को कपड़े पहनाना प्रारम्भ किया। कपड़े पहन लेने के पश्चात् उसे आभूषणों से सुसज्जित किया।

"मुझे अभी-अभी नरेन्द्र को ये गहने तथा कपड़े दिखला लेने दो—" लतिका ने विमला से कहा।

"नहीं, बेटी ! नहीं चलो, आँखों में आँसू भर विमला ने उत्तर दिया।

सरिता के किनारे पहुँच सभी स्नान करने लगीं। माघ का महीना था। सर्दी कड़ाके की थी। लोगों ने लतिका को भी स्नान करने के लिये कहा। उसने इस प्रातःकाल में नहाने से इनकार किया परन्तु

विमला तथा कुचलू की माँ ने हठात् उसे नहलाना प्रारम्भ किया। लतिका यह नहीं समझ रही थी कि आखिर उसकी माँ आज इतनी निष्ठुर क्यों हो गई है।

तत्पश्चात् बुढ़िया ने अपने हाथ में गोमय तथा बालू ले लतिका के सर पर रगड़ना प्रारम्भ किया। यह देख विमला जोर से चिल्लाने लगी। उसे चिल्लाते देख लतिका ने कहा।

बुढ़िया दादी! रहने दो इसीलिये मेरी माँ रो रही है।"

"रोने दो बेटी! बुढ़िया ने कहा, अब तो रोना ही न शेष है।"

पर भोली लतिका इन सब बातों को समझ न सकी।

अन्त में बुढ़िया ने लतिका के हाथों में पड़ी हुई चूड़ियों को भी तोड़ दिया।

अब तक लतिका को विषाद नहीं हुआ था परन्तु चूड़ियों के तोड़ देने के कारण वह हृदय मसोस कर रह गई।

उसे कष्ट अवश्य हुआ परन्तु केवल गहने तथा चूड़ियों के लिये।

× × ×

प्रतिदिन प्रातः तथा संध्याकाल में विमला रोया करती थी। उस समय लतिका कहती थी—

"चुप रहो माँ! नहीं तो मैं पढ़ने न जाऊँगी। अपनी पुत्री को प्रसन्न रखने के लिये विमला चुप हो जाया करती थी।

यद्यपि नरेन्द्र चाहता था कि वह शहर में न जाय परन्तु उसके पिता उसे हठात् ले गये और उसका नाम हाई-स्कूल की चौथी कक्षा में लिखाकर अध्ययन कार्य प्रारम्भ करा दिया।

लतिका अब पाँचवीं कक्षा में पढ़ रही है परन्तु उसका साथी नरेन्द्र अब उसके साथ नहीं है।

× × ×

सातवीं कक्षा की परीक्षा समाप्त कर लतिका का अध्ययन से सम्बन्ध छुड़ा दिया गया। उसकी माँ नहीं चाहती थी कि वह किसी अंगरेजी स्कूल में जाकर भी शिक्षा प्राप्त करे।

समय व्यतीत होता जा रहा था। लतिका में चेतना जाग्रत होती जा रही थी। अब लतिका विवाह के समय वाली लतिका नहीं रह गई थी। उसकी अवस्था सोलह की हो चली थी। यौवन के प्रत्येक चित्र उसके अंग प्रत्यंगों पर अपना प्रभाव डाल चुके थे। भावना-सी चंचल उसके मन की उड़ान कभी-कभी लोकलज्जा के परदे की ओट में उठ जाती थी परन्तु वह अपनी अवस्था से पूर्ण परिचित हो चुकी थी। उसे ज्ञान था कि वह विधवा है। उसके लिये सुख नहीं ऐश्वर्य नहीं प्रत्युत दुःख तथा आपदायें हैं। दीप शिखा-सी शांत भाव में लीन हो वह पूजन इत्यादि कार्यों में लगी रहती थी। उसके लिये संसार में केवल शंकर की पूजा ही थी। वह अब लतिका नहीं बल्कि पुजारिन हो गई थी।

## [४]

मंदिर का घंटा बज कर रुक गया। शब्दायमान अशांत वातावरण सहसा शांत हो गया। सभी एक टक पुजारिन की ओर देखने लगे। भक्तजन पुजारिन के ही कहे हुए प्रार्थना को दुहराने लगे—

"जय हे शंकर जय हे,
जय हे प्रलयंकर जय हे।"

प्रार्थना समाप्त होने पर आरती पुजारिन ने नौकर को दे दिया। नौकर ने सब को आरती दिखा, उस बुझे आरती-पात्र को साफ़ कर रख दिया। उस समय भी पुजारिन कह रही थीं—

"यं शैवा समुपासते शैव इति..."

भक्तजनों ने भी पुनः अपनी प्रार्थनायें प्रारम्भ कीं—

एक अष्टादशवर्षीय युवक पुजारिन को एकटक देख रहा था। पुजारिन के हाव-भाव तथा शंकर के प्रति उसकी श्रद्धा देख वह अपने को बिल्कुल भूल गया था। आज वह ग्यारह वर्ष पश्चात् लौट सकने के कारण ही परिस्थितियों को कुछ भिन्न पा रहा था। फिर भी वह पहचान गया कि पुजारिन अन्य कोई नहीं, बल्कि लतिका ही तो है—

पुजारिन चरणामृत के बाद प्रसाद बाँटती जा रही थीं। सभी लोग भगवान का प्रसाद ले अपने-अपने घर की ओर चले परन्तु वह युवक ठीक उसी स्थान पर खड़ा का खड़ा ही रह गया।

पुजारिन ने भी सब को प्रसाद दे स्वयं प्रसाद लिया। उसका प्रसाद औरों की भाँति चना नहीं था प्रत्युत एक गिलास धतूरे का अर्क था।

युवक ने सोचा—पुजारिन का यौवन-काल है तथा यह विधवा है। इसे समाज ने सांसारिक यातनाओं से अलग रहने का उपदेश दिया है।

यह यौवन के तरल तरंगों तथा मानसिक उड़ानों को इसी धतूरे के बल पर रोक रही है। पता नहीं समाज के विरुद्ध ऐसा नियम क्यों ?

युवक मन विवेचनात्मक सागर में गोते लगा ही रहा था कि पुजारिन ने मंदिर के किवाड़ भीतर से बंद कर दिये।

प्रकाश गर्मी प्रदान करता है एवं अंधकार सर्दी। युवक के गर्म शरीर पर ज्योंहीं सर्द झँकोरे लगे उसका ध्यान टूट गया।

पुजारिन ने युवक को देखा भी न था। अतः वह मंदिर बन्द कर घर की ओर जाने लगी। पीछे-पीछे चलने लगा युवक भी।

पादोत्पन्न कुछ शब्द को सुन पुजारिन ने मुड़कर सहसा पीछे देखा, वह आश्चर्यान्वित-सी रह गई।

"तुम कब आये कुँवर ?" पूछा उसने।

"मैं कुँवर नहीं, नरेन्द्र हूँ—लतिका, उत्तर दिया युवक ने, "और मैं अभी-अभी यहाँ आया हूँ। यद्यपि मेरा तार आज से चार दिन पहले ही आने के लिये था परन्तु न आ सका।"

"लतिका, शब्द सुनते ही पुजारिन की आँखें आँसू से भर गईं। उसे याद हो आईं घटनायें आज से ग्यारह वर्ष पहले की थीं। उनका एक साथ खेलना—मार-पीट के पश्चात् तुरत ही मेल एवं साथ ही पाठशाला जाना एक-एक करके उसकी आँखों के सामने नाचने लगीं। उसे पुनः अपनी वर्तमान दशा पर भी सोचने का अवसर मिला "आज मैं पुजारिन हूँ, क्यों ? भगवान् में अटल विश्वास तथा भक्ति है इसलिये ? नहीं ! नहीं !! इसलिये कि मैं समाज के अमाननीय बचनों का पालन कर सकूँ। वह रो रही थी—तथा आगे बढ़ी जा रही थी। नरेन्द्र भी साथ ही था।

"इस साल कौन-सा दर्जा पास किया—" पूछा पुजारिन ने नरेन्द्र से।

"बी० ए० पास कर चुका हूँ तथा ला ( Law ) में प्रवेश किया है"—उत्तर था।

"तब तो वकालत करोगे न ?"

बहरहाल तो यही विचार है"—नरेन्द्र ने कहा, "अच्छा यह बताओ कि तुमने धतूरे का अर्क क्यों पिया ? लतिका ! क्या तुम्हें वह पागल नहीं बनाता ?

"पागलपन, पागलपन लाने वाली वस्तु से ही दूर होता है नरेन्द्र ! जब मैं स्वयं पगली हूँ तो धतूरा क्या प्रभाव डाल सकता है।"

"क्या तुम पगली हो" पूछा नरेन्द्र ने।

लतिका चुप रही। आँसू बरस रहे थे।

लतिका का घर आ गया। वह किवाड़ खोल घर में जाना चाहती है परन्तु नरेन्द्र अभी साथ में है जाय तो कैसे जाय। यद्यपि उसे वह एक क्षण भी न देखकर अपनी व्यथा को कम करना चाहती है।

"अच्छा अब जाओ—" लतिका ने कहा, "कल पुनः मिलेंगे।"

"परन्तु तुम्हें छोड़कर जाने की इच्छा नहीं करती, लतिका।"

लतिका का सम्पूर्ण शरीर फड़फड़ा उठा। उसके वक्षस्थल नीचे ऊपर होने लगे, उसने कहा—

"नहीं, नहीं, जाओ कल फिर मिलेंगे।" तुरत उसने किवाड़ बन्द करना चाहा परन्तु नरेन्द्र ने आगे बढ़ उसकी बाँह पकड़ ली। पुरुष का यह प्रथम स्पर्श था लतिका के लिये।

उसने झटका मार अपना हाथ छुड़ा लिया एवं कहा, "हट जा नरेन्द्र कुशल नहीं है, मेरी वर्षों की संचित तपस्या पर पानी मत फेरो।"

वह कमरे में घुस गई, नरेन्द्र भी घुस गया उसके साथ ही। झट उसने कोल भी बंद कर दिया।

पत्थर में भी सुराख होते हैं। हृदय भी पिघलना जानते हैं।

कामदेव पर विजय बड़े-बड़े सिद्ध योगी तथा महर्षि नहीं पा सके तो भला लतिका की क्या सामर्थ्य ?

× × ×

चलते समय नरेन्द्र ने आश्वासन दिया—"लतिका ! मैं सदैव से तेरा हूँ तथा तेरा रहूँगा।"

लतिका का हृदय व्यथा से लद गया। उसे अब कुछ नहीं सूझ रहा था।

पन्द्रह दिन पश्चात् लतिका के ससुराल में उसके देवर की शादी पड़ी। ससुराल से विदाई के लिये प्यादा आया। पं० उमाकांतजी ने विदा कर देना उचित समझा।

× × ×

पन्द्रह दिनों की छुट्टी बिता नरेन्द्र भी लखनऊ पढ़ने चला गया।

[ ५ ]

राजेश्वर के छोटे भाई रामदेव का विवाह होने वाला है। भाँति-भाँति की तैयारियाँ हो रही हैं। सभी लोग इधर-उधर के कार्यों में लीन हो व्यस्त हैं परन्तु लतिका चुपचाप एक कमरे में बैठ रो रही है। वह अभागिन है। शुभ अवसरों पर उसका दर्शन भी न होना चाहिये अतः वह एकांत सेवन में ही लगी है।

तैयारियों के जितने काम थे सब में लतिका ने पूर्ण सहयोग दिया। परन्तु शुभ अवसर पर वह ठुकरा दी गई।

विवाह सम्पन्न हुआ। सहस्रों पुरुषों ने भोजन किया। घूरे पर पड़े हुए लड्डू तथा बुनियाँ को तिलक के दिन कुत्ते भी नहीं पूछते थे परन्तु बेचारी लतिका का उस दिन पेट भी न भर सका। यही है समय का फेर। पं० उमाकांत जी के यहाँ सम्पूर्ण वस्तुओं की एक मात्र अधिकारिणी आज चार दिन से लगातार उपवास कर रही है। क्यों? इसीलिये कि वह विधवा है। यदि आज उसका पति होता तो क्या ये बातें सम्भव थीं? नहीं, कदापि नहीं।

लतिका की सास ने भाँति-भाँति की व्यथायें उसके सामने उपस्थित कीं। शब्द से, मौन से, नाक सिकोड़ से, आँख के इशारे से, हाथ मटका कर या किसी भी प्रकार उसके निरादर की आजमाइश होने लगी।

जब घर के सभी लोग आराम करते हैं उस समय भी लतिका अपने कामों में व्यस्त रहती है। यद्यपि लतिका के आने से पहले कूटने-पीसने तथा अन्य इसी प्रकार के कार्य के लिये मजदूरनी आया करती थी परन्तु अब उसकी सासु ने उसे मना कर दिया इसीलिये कि लतिका स्वयं सभी कार्य करेगी।

दिन भर बेचारी कामों में लगी ही रहती है। उसे थोड़ा आराम करने के लिये समय भी नहीं मिलता। जब सब की चैन से कटती रहती है उस समय भी वह सरसों साफ करती है तेली को देने के लिये। दाल दलती है। इत्यादि।

फिर भी उसका देखना सभी अपसकुन मानते हैं।

प्रातःकाल बिस्तरे से उठने के बाद उसके अन्दर यह शक्ति नहीं कि वह अपना मुँह किसी को देखने दे। यदि कभी-कभी उसकी सास सबेरे उसका मुँह देख भी लेती है तो उसे सैकड़ों गालियाँ सुनाती है। फिर भी चुपचाप वह सब कुछ सह लेती है।

बड़े सबेरे उठकर बर्तन माँजना, घर तथा आँगन झाड़ना उसका काम है तत्पश्चात् अन्य अनेकों कार्यों को पूरा कर स्नानोपरांत भोजन बनाती है। वह मजदूरिन तथा मिश्राणी दोनों हैं। सभी धंधे बजाती हैं परन्तु भोजन पाती है कुतिया के समान।

कभी-कभी जब सास बिगड़ जाती है तो उसके कोमलांगों पर लात चलाने में भी उसे हिचक नहीं आती। फटे पुराने कपड़ों पर गुजर करती है फिर भी आलसी है, पेटू है, कर्कशा है।

एक दिन सास ने कहा—"कि रामदेव स्कूल जायेगा उसे तुरत भोजन बना दो।"

"माताजी! आज सर में पर्याप्त वेदना है, शक्ति नहीं है भोजन बनाने की, क्षमा कीजिये।"

"ठीक है, जब कुछ करोगी ही नहीं तो तुम्हारा यहाँ रहना बेकार है निकल जा घर से" कहते हुए उसकी सास ने उसे झाड़ुओं से खूब पीटा।

× × ×

चार दिन बीत गये उसे कुछ भोजन भी नहीं मिला। यों तो तबीयत ठीक न रहने पर भी बुरी दशा हो जाती है परन्तु जब तबीयत

भी ठीक न हो और कुछ खाने को भी न मिले तो अवस्था कैसी होगी इसे भोगी ही समझ तथा जान सकता है।

जब दुर्दशायें चरमसीमा पर पहुँच गईं, सहन शक्तियों ने उन्हें सहने से इनकार कर दिया उसी समय लतिका ने पत्र लिखा अपने पिता को—

"पिताजी !"

क्या आपने पैदा करना ही अपना कर्त्तव्य समझा है ? आपको मालूम होना चाहिये कि आपकी लतिका निरन्तर व्यथा की ज्वाला से झुलस रही है। प्राण-पखेरू उड़ना चाहते हैं परन्तु प्रतीक्षा कर रहा है केवल आपकी दया की। आप शीघ्रताशीघ्र मुझे अपने यहाँ ले चलिये अन्यथा लतिका अब पुनः न देखी जा सकेगी। आपकी—

लतिका।

पत्र पाते ही पं० उमाकांत जी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये। तुरत राजेन्द्र बाबू की कार मय ड्राइवर ले वहाँ पहुँचे। वहाँ लोगों ने पर्याप्त हठ किया कि आप कुछ भोजन इत्यादि कर लें परन्तु पंडित जी ने साफ इनकार कर दिया और लतिका को विदा करा घर ले आये।

## [७]

गोपनीय बातें कम छिपती हैं। समाज क्या अंधा ही है। एक ही कार्य को भिन्न भिन्न दृष्टि से देखना यह पतित समाज का ही कार्य है। मुहल्ले वालों का जमघट श्री उमाकांत जी के घर पर लगा था। सभी भाँति-भाँति के प्रश्न लतिका के सम्मुख रख रहे थे परन्तु बेचारी लतिका चुप थी उसका मस्तक पृथ्वी की ओर झुका था।

कुचलू की माँ ने पं० उमाकांत जी से कहा, "पंडित जी! अब लतिका आपकी नहीं रह गई, इसे शीघ्रताशीघ्र घर से निकाल अपने सर का बोझ हलका कीजिये—"

"विष भी नहीं मिलता भाभी! अन्यथा सब झगड़ा ही तय हो जाता—" श्री उमाकांतजी ने उत्तर दिया।

"खैर! अब जो सामने आया है वोही देखिये और तुरत तैयारी कीजिये उसके निष्कासन की—" कहा कुचलू की माँ ने—

"ठीक ही है, कुचलू की माँ! जो कुछ श्रेयस्कर है शीघ्रताशीघ्र करो—" पंडित जी ने कहा।

थोड़ी ही देर पश्चात् लतिका घर से निकाल दी गई। जाते समय माता की इच्छा हुई कि कुछ रुपये इत्यादि दे दिया जाय परन्तु लतिका ने एक पैसा लेना भी अस्वीकार किया।

दूसरे ही दिन प्रातःकाल लतिका घर से निकल पड़ी तथा चल पड़ी पूर्व दिशा की ओर। जो लतिका कभी धूप में घर से बाहर पैर भी नहीं रखी थी वही आज परिस्थिति विशेष के कारण कुआर महीने की प्रखर धूप का सामना करती हुई आगे चली जा रही थी।

भूख के मारे उसके पैर आगे बढ़ने में असमर्थ जान पड़ते थे परन्तु करे तो क्या करे ? पास में कुछ भी नहीं था कि वह भोजन कर सके। चली जा रही थी, संध्या हो चली। पक्षीगण विश्रामार्थ अपने-अपने घोंसलों की ओर जाने लगे। सभी जीवों ने यत्र-तत्र शरण ली पर बेचारी लतिका यदि जाय तो कहाँ जाय ? वह अभागिन है, दुःखिया है तथा गृहहीन है। यह किसका प्रताप तथा अभिशाप है। समाज का।

× × ×

स्त्रियों की आपदायें स्त्रियाँ अधिक अनुभव कर सकेंगी बनिस्बत पुरुषों के—

इकादशी का पर्व था। गाँवों की अनेकों स्त्रियाँ गंगा स्नान करने जा रही थीं। उन्होंने देखा कि नगर के पूर्व भाग में स्थित एक पोखरे पर एक स्त्री बैठी हुई है एवं नगर से माँग कर लाई हुई पूड़ियाँ उसके निकट ही रखी हुई हैं। जब ग्रामीण स्त्रियों ने उसकी ओर देखा तो उसने इन्हें संकेत से बुलाया।

"चलो फुन्नू की माँ। जरा यह देखें कि यह स्त्री क्यों बुला रही है—" रमियाँ ने कहा।

"तुम तो सम्पूर्ण रास्ते में खुराफ़ात ही मचाती रहती हो, चुपचाप रास्ता पकड़ कर घाट की ओर चलो। आखिर उसके यहाँ जाने से क्या तात्पर्य ? नगर की औरत है कुछ माँगने के लिये बुला रही होगी। ऐसी ही स्त्रियाँ तुम्हें यहाँ अनेकों मिलेंगी, चल चलो चुपचाप—आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास। यही तुम्हारा भी हाल है—" उत्तर दिया फुन्नू की माँ ने।

रमियाँ चल पड़ी पर उसकी आँखों में करुणा थी फिर भी उसने मुड़कर उस स्त्री की ओर देखा।

स्त्री ने हाथ जोड़ते हुए उसको पुनः संकेत किया अपने पास आने के लिये। रमियाँ का हृदय दया से भर आया। उसने सोचा "आखिर गंगा में जाकर नहाना अच्छा है या आपदाओं से आक्रांत इस स्त्री की कुछ सहायता करना। स्नान तो एक आडम्बर है। वह लौट पड़ी।

"चलो फुन्नू की माँ" लौटते समय रमियाँ ने कहा, "तुम चलो मैं अभी-अभी उस स्त्री से भेंट कर आ रही हूँ।"

"जाओ, जाओ या न जाओ, इससे मुझ से क्या मतलब" कहा फुन्नू की माँ ने। "पर हाँ, ऐसे ही लोगों के साथ आने की जरा भी इच्छा नहीं करती। यदि...।"

रमियाँ लौट पड़ी थी। उसने फुन्नू की माँ की बकबक सुनी पर कुछ कह न सकी। उस स्त्री के पास पहुँच देखती है कि स्त्री प्रसव-कालीन वेदना से पीड़ित है। जिसे रमियाँ भली-भाँति जानती थी। वह इस कार्य में उपचार करने में तल्लीन हो गई। प्रसव हुआ। वह लड़की थी।

उसी पोखरे के पश्चिमी भाग में एक मस्जिद थी। उसी मस्जिद में यह कार्य हुआ। वहीं युवती बैठी रही और रमियाँ शीघ्रता से शहर में जा एक कठवत तथा पाँच बोतल स्प्रिट ले आई।

रमियाँ उस युवती के सम्पूर्ण वृत्तांतों से बातचीत के दौरान में परिचित हो चुकी थी। अतः उसने कहा—आप बच्ची को यहीं छोड़ दीजिये। बहुत से लोग यहाँ भ्रमणार्थ आया करते हैं, कोई न कोई दयालु व्यक्ति उठा ही ले जायें और उसका पालन-पोषण भलीभाँति हो जायेगा।"

युवती सुन रही थी, रमियाँ कहती गई, "देखिये, मैंने आपके लिये यह स्प्रिट इसी ध्येय से मँगाया है कि यदि आप इसमें बैठ जायेंगी तो अंगप्रत्यंगों की पीड़ा भी समाप्त हो जायेगी तथा स्तनों का दूध भी जल जायेगा। दूध की तो आवश्यकता है नहीं।"

युवती की आँखों में आँसू थे। उसके सामने आज सभी बातें एक-एक कर आने लगीं। वह नरेन्द्र की धोखेबाजी से आक्रांत हो उठी, और कहने लगी "नरेन्द्र! तुझे नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा।"

कोतवाली में बजा हुआ पाँच का घंटा सुनाई दिया।

रमियाँ ने कहा, "शीघ्र कीजिये नहीं तो उजेला होने वाला है कोई आकर देख लेगा तो बड़ी गड़बड़ी होगी।"

'जैसा करना हो वैसा कर दो, बहन!" संक्षेप में उत्तर था। आँसू अपना काम करने में निरंतर व्यस्त थे।

रमियाँ के पास १॥ गज़ लम्बा एक तौलिया था। उसी को दोहरा कर उसने बच्ची को सुला दिया।

बच्ची चिल्ला उठी। दोनों वहाँ से चल पड़ीं। थोड़ी ही दूर जाने पर युवती ने कहा, "तुम जाओ बहन! मैं अब यहीं कुछ समय तक आराम करके आगे बढ़ूँगी।"

दोनों एक दूसरे से गले मिल विदा हुईं। युवती लतिका ही थी। वह बैठकर अब यह देखना चाहती थी कि उसकी बच्ची को कौन ले जाता है। वह बैठी हुई थी—आँसू निरंतर अपना कार्य कर रहे थे।

× × ×

टप, टप, टप का शब्द सहसा रुक गया। लतिका ने देखा, दो व्यक्ति उसमें बैठे हुए थे। वह ताँगा था।

दोनों व्यक्ति ( एक स्त्री, दूसरा पुरुष ) ताँगे से उतर इधर-उधर घूमने लगे। सहसा उन्हें किसी बच्चे की आवाज सुनाई दी। दोनों ने मस्जिद के अग्रभाग में जाकर देखा कि एक लड़की सुलाई गई है।

"अपने यौवन को पारकर यह लड़की बड़ी ही सुन्दर होगी" कहा राहत ने चमेली से।

"जी हाँ ! मैं भी यही कहने वाली थी। यदि हमलोग इसे अपने यहाँ ले चलकर पालन-पोषण करें तो क्या हर्ज होगा बाबूजी !" चमेली ने कहा।

"कुछ नहीं, ले चलो" उत्तर था। यद्यपि आज उनकी सैर पूरी न होई पायी थी परन्तु आतुरता-वश वे तुरत चल दिये।

कोचवान ने घोड़े की बाग ढीली की। घोड़ा चल पड़ा तेजी से।

"टप-टप-टप" वही शब्द लतिका ने सुना। उसने यह दृश्य अपनी आँखों से देखा। रह गई वह हृदय मसोस कर। उसके हृदय में हर्ष तथा विषाद दोनों थे।

✿

[ ८ ]

लड़की का पालन-पोषण बड़े ही लाड़ प्यार से प्रारम्भ हुआ। समय बीतता जा रहा था तथा समय के साथ-साथ वह भी बढ़ती जा रही थी दूज के चाँद की भाँति। राहत तथा चमेली जब पोखरे की सैर करने जाते तो उसे भी साथ ले जाते। राहत ने उसका नाम "नूरजहाँ" रखा।

सुख की घड़ियाँ कैसे बीतीं, इसका ज्ञान भी लोगों को कम ही होता है।

चार वर्ष पश्चात् राहत ने नूरजहाँ को एक प्राइमरी पाठशाला में पढ़ने के लिये भेज दिया। वह खुशी-खुशी अध्ययन कार्य में लग गई।

परिवर्तनशील संसार है। इसमें प्रसन्नता तथा अप्रसन्नता साथ-साथ पाई जाती हैं। यदि एक ओर प्रकाश तो दूसरी ओर अंधकार अवश्य है। इसी से किसी ने ठीक ही कहा है, "संसार विचित्र है।"

जिस चमेली ने पाल-पोषकर नूरजहाँ को बड़ा बनाया, वही नूरजहाँ की सफलता अपनी आँखों न देख सकी। आखिर वही होकर रहा जो परमेश्वर को मंजूर होता है। चमेली बिदा हो चली, इस असार संसार से।

कुछ समय तक तो राहत के यहाँ बड़ी उदासी रही, क्योंकि आमदनी का स्रोता ही सूख गया, परन्तु फिर भी विशेष चिंता की बात नहीं थी। भावी आशा थी तथा वर्तमान के लिये डाकखाने में रुपये भी जमा थे।

खैर, समय बीत चला। नूरजहाँ ने पढ़ाई इत्यादि से सम्बन्ध छोड़ दिया अब वह अपने कोठे पर ही रहने लगी।

उसका पन्द्रहवाँ वर्ष व्यतीत हो रहा था—यौवन के प्रत्येक चिन्हों ने अपना प्रभाव उसके अंग प्रत्यंगों पर प्रदर्शित किया था। क्या ही

रमणीयता थी उसमें। वास्तव में रमणी शब्द उसी को शोभा देता है जिसमें रमणियता हो।

"वह तन्वी तथा श्यामा थी, दाँत उसके इतने भले थे कि कवियों के शब्दों में वह शिखरीदशना कही जा सकती थी। पके हुए लाल बिम्ब फल की भाँति उसके अधर थे। उसका क्षीणतर कटि प्रदेश और भी क्षीण था। कपोलों तथा मुखमण्डल का पूछना ही क्या कामना सी चंचल, भावना-सी विकल थी वह। शहर के लिये अद्वितीय थी— रूप रंग में।

परमपिता ने सृष्टि में सरसता लाने के लिये स्त्रियों का निर्माण किया। पर स्त्री-व्यक्तित्व में सरसता कहाँ? अतः उन्हें यौवन तथा सुन्दरता प्रदान की गई। यौवन तथा सुन्दरता को सफल बनाने के लिये उन्हें लज्जा अर्पित की गई। और सरसता में डूब आनन्द प्राप्ति के लिये पुरुष बनाया गया।

सरसता, यौवन तथा सुन्दरता में नूरजहाँ का प्रथम स्थान हो रहा। उसके लिये सम्पूर्ण शहर लट्टू हो चला। जिसके मुँह से सुनिये उसकी ही चर्चा चलती। वह रूपनगर की सर्व प्रसिद्ध नर्तकी हो चली।

रूपनगर में खूब रंगरेलियाँ होती है। युवतियों की तिरछी चितवन, मधुर मुस्कान तथा हावभाव पर फतिंगे जी-जी कर मरते तथा मर-मर कर जीते हैं। उनकी प्रतिष्ठा उनकी भावनायें तथा उनकी अस्मतें चाँदी के ठीकरों से आँकी जाती हैं। उनका यौवन मोल खरीदा जाता है। उनके साथ बातें करने की भी क़ीमत होती है। उनके अंग-प्रत्यंगों की भिन्न-भिन्न कीमतें हैं।

यौवन के तरल तरंगों से ठोकरें खा पुरुष मस्त हो जाता है— अंधा हो जाता है। इस अवस्था में यदि सूझती है किसी को तो वह बड़ा ही बुद्धिमान तथा विद्वान है। अपने तृषित नेत्रों, तृषित अधरों तथा तृषित कामेन्द्रियों की तृप्ति के लिये वह जाता है उसी रूपनगर में।

सम्पूर्ण वैभव पानी की तरह बहा, सम्पूर्ण प्रतिष्ठा पर पानी फेर कलंक का टीका भाल में लगा, पुनः उन्हीं तितलियों के पास जाता है वह युवक भीख माँगने। क्यों ? पेट-पूजा के लिये। प्रतिष्ठा के साथ सम्पूर्ण वैभव को भी नष्ट करने वाली शक्ति धारिणी को हम वेश्या कहते हैं। इनके मनमोहक माया जाल में जो एक बार फँसा वह फँसा ही रह गया पुनः निकलने की नौबत न आई।

उसी रूपनगर में नूरजहाँ भी रहती थीं। प्रतिदिन उसके यहाँ नगर के मनचले युवकों की भीड़ लगी रहती परन्तु उसके कमर की लचक का मूल्य आँकने तथा अदा करने की शक्ति एक लखपति में ही हो सकती थी।

राहत की चल पड़ी थी। बड़े-बड़े अमीर उसे अपने यहाँ बुला उसकी खुशामद करते थे।

# [ ९ ]

अस्तप्राय सूर्य की किरणें नगर की ऊँची अट्टालिकाओं पर चमक रही थीं। थोड़ी ही देर बाद रात्रि की कालिमा का आना जान्ना कोक-समुदाय विरहानल की आशंका से शोकित हो गया। पर इससे क्या? प्रकृति का जो अटल नियम है वह तो होकर ही रहता है। रात्रि आई और उसने संसार के हितार्थ प्रकट किया त्रिभुवन ललाम भूता चन्द्रमा को।

कलकलनादिनी सरिता उस समय भी अपना कार्य करने में व्यस्त थी। सरिता के शीतल कणों के स्पर्श मात्र से शीतल, विकसित पुष्प-पुंज के प्रस्फुटित परिमल के सहज सहवास से सुगन्धित तथा मस्त मदन-समीर नौका में ठोकर लगा उन दोनों के हृदय में अतुलित आनन्द का संचार कर रहा था। वे दोनों चले जा रहे थे बैठे हुए नाव में। उनके हृदय की उथल-पुथल देख सरिता के हृदय पर भी उथल-पुथल की ठोकरें लग रही थीं। बड़ा ही सुहावना समय था वह।

आकाश में मधुर चन्द्र उनकी प्रसन्नता देख और भी हँसने लगा। प्रफुल्ल पुण्डरीक की भाँति आकाश में वह विलसित हो रहा था और वह चंचरीक-राजि की भाँति उसके बीच में विलसित हो रही थी कलंक-कालिमा। एक ही पुण्डरीक प्रस्फुटित होकर समस्त सरिता को अपनी आभा से सामुहिक कर रहा था।

चन्द्र के इस परम रमणीय प्रकाश में, यौवन के अतुलनीय उल्लास में चले जा रहे थे, नौका के साथ वे दोनों। शराब की बोतलें खाली होती जा रही थीं। तीसरी के बाद अब चौथी पर हाथ फिरने वाला था।

"चन्द्रमा की मुस्कुराहट क्या ही अतुलनीय है—" कहा नूरजहाँ ने बालकृष्ण से।

"क्या चाँदनी—" ठुड्डी उठाते हुए बालकृष्ण ने उत्तर दिया, "उससे कम शोभा प्रदान कर रही है ?"

नूरजहाँ खिसका ली गई, बालकृष्ण उसकी ओर एक टक देखने लगा। दो तृषित अधर एक दूसरे से मिलने के लिये व्याकुल हो उठे। यह दृश्य देख आकाश में हँस रहा था चन्द्रमा।

नूरजहाँ ने बोतल की कार्क हटा जाम में भरकर उँडेल दिया। बालकृष्ण गट-गट कर सम्पूर्ण साफ़ कर गया। पुनः स्वयं अपने हाथों से जाम भर उसने उसे नूरजहाँ के अधरों की ओर बढ़ाया।

क्या ही नजाकत थी नूरजहाँ में। शराब पी लेने के बाद उसने अपने शरीर को बालकृष्ण की गोदी में लिटा दिया।

बालकृष्ण ने भी पकड़ लिया, उसे पकड़ लिया, कसकर। दो हृदय ऐसे मिले मानों वर्षों से बिछुड़े हों।

"आपके साथ रहने में बड़ा ही आनन्द आ रहा है, कुँवर!" कहा नूरजहाँ ने।

"उससे अधिक आनन्द का अनुभव मैं कर रहा हूँ प्राणेश्वरी—" उत्तर था।

दोनों अधर पुनः मिल गये। तृषितों को पेय मिला। हृदय देख रहा था चन्द्रमा आकाश से।

"क्यों कुँवर!" पूछा नूरजहाँ ने—"कल तो मुझे भूल न जाइयेगा ? बड़े-बड़े रईस आते हैं, आनन्द ले, तृप्ति कर दूसरे दिन अग्राह्य भोजन की भाँति तनिक देखते भी नहीं, वही दशा आपकी भी न होगी ?"

"देखो नूरजहाँ! मैं पक्का आवारा हूँ, शहर में मेरी काफ़ी बदनामी हो चुकी है परन्तु मैं मोम पर जलने वाला फतिंगा नहीं। परमेश्वर ने मुझे नेत्र दिये हैं। मैं देख रहा हूँ कि ऐशोआराम में दिन बिताना क्या है—अपने में मांस तथा रक्त की कमी करते हुए जीवन की बहुमूल्य

चीज़ खो बैठना है। यहाँ तक तो मैं कर रहा हूँ—परन्तु सम्पूर्ण वैभव खो बैठना यह मुझ से नहीं हो सकेगा। मैं वेश्यागामी हूँ परन्तु उनपर जल-जल कर मरने के लिये नहीं।"

"मैं हूँ प्रेम का पुजारी नूरजहाँ। मैं प्रेम खोजता हूँ। जहाँ मुझे प्रेम मिलेगा वहीं मैं लिपट जाऊँगा। मैं जानता हूँ वेश्यायें किसी की भी नहीं होतीं। तुम भी तो वही हो न ?"

नूरजहाँ का हृदय दहल उठा। आज तक उससे बहुत से लोगों से भेंट हुई थी परन्तु उसे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला था जो इतनी खरी सुनाये। परन्तु इससे क्या ? उसे तो चूसना था। झट अपनी सम्पूर्ण अदाओं का तीर चलाती हुई बोल उठी, "मुझ में आपके प्रति प्रेम है कुँवर !" एवं तुरत उसने बोतल का कार्क हटा शराब उँडेल लिया और बालकृष्ण के अधरों पर लगा दिया।

"अच्छा अब लौटा जाय" कहा बालकृष्ण ने। "हमलोग आज बड़ी दूर निकल आये।"

"इच्छा तो यही होती है कि इसी तरह मैं आपकी गोदी में पड़ी रहूँ और एक दिन जीवन यात्रा बीत जाय'—नूरजहाँ ने कहा।

बालकृष्ण ने मुस्कुराते हुए एक चुम्बन लिया एवं नाव लौट पड़ी।

× × ×

बालकृष्ण नगर के एक बड़े ही प्रतिष्ठित व्यक्ति सेठ श्रीकृष्ण का पुत्र था। सेठ ने इसके रहने के लिये शहर में एक अलग बंगला बनवा दिया था। वे आज इसी बंगले में आ, ड्राइंग रूम में बैठ अपने पुत्र बालकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे थे।

× + ×

नाव किनारे लगी तथा बाँध दी गई। कार भी वहीं खड़ी थी। शोफ़र झपकी लेता हुआ प्रतीक्षा कर रहा था। नाव के किनारे लगने से उत्पन्न शब्दों ने उसकी झपकी तोड़ी, वह तुरत बाहर आ दरवाजा

खोल दिया। बालकृष्ण तथा नूरजहाँ बैठ गये। बालकृष्ण ने मोटर ड्राइव की।

रास्ते में ही नूरजहाँ का घर पड़ता था। मोटर रुक गई। नूरजहाँ उतरी और बालकृष्ण से आँखें मिला ऊपर जाने लगी। बालकृष्ण ने उसे दश-दश के पाँच नोट निकाल कर दे दिये।

आगे कार बढ़ी। बालकृष्ण का बंगला आ गया। तुरत कार खड़ी कर वह ज्यों ही ड्राइंग रूम की ओर बढ़ा कि झट उसकी दृष्टि पड़ी अपने पिता पर। वह दहल गया। उसे पता नहीं कि आखीर उसके पिता वहाँ इस असमय में क्यों आये।

"कहाँ थे बालकृष्ण!" सेठजी ने पूछा।

"घूमने गया था पिताजी।"

"कहाँ?"

"यों ही, इधर-उधर।"

"आखिर कहाँ?"

"नदी तट पर।"

"अकेले ही थे?"

"जी हाँ।"

"देखो बेटा अकेले कहीं न जाया करो। जमाना बड़ा खराब है। मैं तुम्हारी यहाँ तीन घंटे से प्रतीक्षा कर रहा था। खैर तुम आ गये। यही कहना है कि जरा घर के काम-काज में भी हाथ बँटाया करो। यदि किये नहीं रहोगे तो पुनः मेरी मृत्यु के बाद तुम्हें ही तकलीफें सहनी होंगी। अच्छा, कल १२ बजे बँगले पर आना।"

"अच्छा पिताजी, जरूर आऊँगा।" उत्तर दिया बालकृष्ण ने, उसके हृदय की धड़कन कुछ कम हुई। वह सोने वाले कमरे में गया।

## [ १० ]

कुछ समय बाद । लखनऊ यूनिवर्सिटी से एल एल० बी० की डिग्री प्राप्त कर नरेन्द्र अपने शहर में जा प्रेक्टिस करने लगा । प ले तो उसे बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा परन्तु बाद में सभी कठि-नाइयाँ स्वयमेव हल हो गई । उसी के मुहल्ले में ही एक डाक्टर साहब थे जिनका नाम था फड़फड़दास । डाक्टर साहब की भी प्रेक्टिस मजे की थी । महीने में इन्हें भी दो-चार सौ की बचत हो जाया करती थी ।

एक दिन डाक्टर साहब तथा वकील साहब बैठ आपस में गुलछर्रें उड़ा रहे थे । इसी बीच बात की दौरान में ही डाक्टर साहब ने कहा, "भाई रुपया पैसा कमाना दूसरी बात है तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करना दूसरी वस्तु । अब हमलोगों को कुछ ऐसे कार्य करने चाहिये जिससे पब्लिक में काफ़ी नाम हो जाय ।"

"तो क्या डाँका डाला जाय"—वकील साहब ने पूछा ।

"तुम्हें तो भाई हर समय मज़ाक ही सूझता है, तुम से कोई क्या बातें करेगा ?"—कहते हुए डाक्टर साहब उठकर चलने लगे ।

"भाई ! आप मज़ाक में भी अप्रसन्न हो जाते हैं ? खैर बैठिये अब ऐसी गुस्ताखी नहीं करूँगा" कहते हुए बड़ी मुश्किल से वकील साहब ने उन्हें बिठाया ।

थोड़ी देर पश्चात् पुनः वकील साहब ने पूछा "आखिर वह कौनसा कार्य होना चाहिये ।"

"जनता की सेवा, यद्यपि हमलोगों को कुछ विशेष करना नहीं पड़ेगा परन्तु नाम पूरा हो जायेगा ।"

"यह कैसे ?"

"अखबारों में अपनी मन चाही खूब नमक मिर्च मिलाकर प्रकाशित करा दी जायेगी।" उत्तर दिया डाक्टर साहब ने। इसी बीच उनलोगों के एक और साथी राजनारायण भी आ गये। उनके सामने जब मसविरा रखा गया तो वे कूद पड़े, लगे कहने, "बहुत ठीक, यदि संसार में कुछ नाम करना चाहें तो यही रास्ता श्रेयस्कर है।"

अतः निश्चित रहा कि देशोद्धार की योजना सामने रखते हुए कल प्रातः ६ बजे एक सभा की जाय जिसमें कंगलू, मंगलू, घोंघा सभी बुला लिये जायेंगे। उक्त लोगों के यहाँ संदेश भी भेज दिया गया।

× × ×

दूसरे दिन प्रातः होते ही सभी व्यक्ति नित्य क्रिया से मुक्त हो स्नान करने लगे। स्नानोपरांत कुछ जलपान कर धीरे-धीरे सभी नरेन्द्र बाबू, बी० ए०, एल एल बी० के बँगले पर आने लगे।

सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सर्व प्रथम सभापति को प्रस्ताव रखा गया। श्रीनरेन्द्र बाबू उक्त पद पर रखे गये। तदंतर श्रीफड़फड़दासजी सेक्रेटरी बनाये गये। मंगलू बाबू को कोषाध्यक्ष तथा घोंघा को प्रचार मंत्री चुना गया।

सर्व प्रथम विधवा विवाह की समस्या रखी गई। सब को इस विषय पर बोलने का समय दिया गया। सभी ने भाषण दिया जिनका आशय इतना तो अवश्य था—

"समाज में विधवायें बहुत ही अपमानित हैं। उनके प्रति समाज के जो अन्याय हैं वे असह्य हैं। उन्हें भी पुरुषों की ही भाँति प्रत्येक पहलू से स्वतंत्र होना चाहिये। सर्व प्रथम उन्हें विवाह की आज्ञा मिलनी चाहिये। ऐसा न होने से आये दिन क्या-क्या हानियाँ हो रही हैं यह किसी से भी छिपा नहीं है। वेश्यागृहों तथा चंडू-गृहों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है इसका कारण क्या है? इत्यादि।"

भाषण समाप्त होने पर सभापति ने सबको धन्यवाद दिया तथा सभा विसर्जन हुई।

मामूली-सी बात का कैसे पहाड़ बन जाता है, यह पूछिये समाचार-पत्र संवाददाताओं से। हिन्दी दैनिक पत्रों में प्रकाशित हुआ।

"देशोद्धार की योजना सामने रखते हुए सरस्वती भवन में आज श्री नरेन्द्र बाबू के सभापतित्व में एक सभा हुई। जिसमें नगर के बहुत से लोग सम्मिलित थे। सभा यह प्रकाशित कर रही है कि विधवा विवाह से हम सहमत हैं यदि कोई विधवा हो तो वह तुरत सभापति देशोद्धारक-समिति को आवेदन-पत्र भेजे। बहुत से विद्वानों के भाषण हुए तत्पश्चात् सभा विसर्जित की गई।"

श्री नरेन्द्र बाबू के दो बैठके थे। यह उन्होंने एक को इसी कार्य के लिये कार्यालय बना दिया। उसके ऊपर साइन बोर्ड लगा दिया।

"कार्यालय, देशोद्धारक समिति, नाटक नगर, बाँकुड़ा।

समय बीतता गया। सभा की कार्यवाही चलती गई। लोगों ने चंदा देना भी प्रारम्भ कर दिया था।

कुछ भूले-भटकों को रास्ता बतला दिया, कुछ भूखों को भोजन दे दिया गया बस जनता में वाह-वाह की धूम मच गई। प्रतिदिन एकाध बड़े ही उत्तेजित तथा ओजमय भाषण प्रकाशित होते गये। सभापति का नाम तो फैल ही रहा था, डाक्टर साहब की भी पूरी ख्याति हो चली। सभी जानते तथा कहते थे कि सभा के संस्थापक डाक्टर फुड़फुड़दास ही हैं।

कोषाध्यक्षजी का भी क्या पूछना था। काफ़ी भरोसा था श्रीयुक्त घोंघा बाबू का, जिनका कार्य था प्रचार करने का।

बीतता जा रहा था समय एवं बढ़ती जा रही थी प्रतिष्ठा।

# [ ११ ]

संध्या का समय हो चला था। शीतल मंद-सुगन्ध समीर के झकोरे सन-सन शब्द करते हुए चल रहे थे। सरिता के तट पर बैठकर वे दोनों हृदय देख रही थीं। वे विभोर थीं सरिता की उन चंचल लहरों में।

"इन क्षणिक लहरों के समान ही मनुष्यों के मनोरथ भी क्षणिक ही हुआ करते हैं, लीला ने कहा लाड़ली से, क्यों ठीक है न ?"

"ठीक ही है"—असमयस्का-सी उत्तर दिया उसने।

"सखी लाड़ली ! दो-तीन दिनों से तुम इतना उदास क्यों रहती हो पता नहीं चलता।"

"नहीं, लीला ! उदास तो मैं नहीं रहती।" "नहीं, नहीं तुम्हारी बातें गलत हैं तुम उदास अवश्य रहती हो, ऐसा ही लगता है कि तुम किसी को चाह रही हो"—लीला ने कहा।

बातें सही थीं पर लाड़ली ने बनावटी क्रोध दिखलाते हुए कहा, "क्या तुम अपने से ही सम्पूर्ण संसार को आँकती हो ? मुझे मालूम नहीं कि गिरिवर भय्या तुम्हें चाहते तथा मुझ से प्रेम करते हैं ? मुझे ज्ञान नहीं कि तुम उनसे मिल भी चुकी हो।"

"तो इसे मैं कब इनकार करती हूँ, लाड़ली ! तुम मुझ पर व्यर्थ-क्रोधित न हो। यदि बात सही है तो बतला दो, हो सकता है मैं भी तुम्हारी कुछ मदद कर सकूँ।"

लाड़ली चुप रही।

किसी बात को व्यक्त करने में जहाँ जिह्वा असमर्थ रहती है वहाँ नेत्र ही कार्य कर जाया करते हैं। लीला भी समझ गई कि उसकी आशंका सही है।

पुनः उसने प्रश्न किया "क्यों लाड़ली ! बतला देने में क्या हर्ज है।"

वह हठ करती ही गई....लाड़ली ने कहना प्रारम्भ किया "बहन ! उस दिन...

"किस दिन ?"

"कल बृहस्पति को जब हम यहाँ पानी भरने के लिये घड़े ले आईं थीं उसी दिन मैंने देखा एक युवक एक युवती को अपनी गोदी में लिटाये चला जा रहा था—नाव में बैठे-बैठे। उनकी प्रसन्नता देख स्वच्छ आकाश में चंद्र भी मुस्कुरा रहा था। युवती प्रायः अर्धनग्न थी। चाँदनी में उसके अंग-प्रत्यंग मैंने साफ़ देखे—युवक भी बड़ा ही भाग्य-शाली था कि रति के समान सौंदर्य वाली युवती उसकी गोद में लेटी हुई थी। शराब की बोतलें खाली होती जा रही थीं। युवक मस्त था—यौवन के तरल-तरंग उससे इठला रहे थे। उनकी नौका धीरे-धीरे सरिता के वक्ष पर चली जा रही थी।"

"बहन ! जब यौवन आ गया हो, मस्ती सवार हो गई हो तो क्या उस समय उक्त दृश्य को देखकर न मस्त होने वाला भी कोई पत्थर हृदय होगा ? मेरी समझ से इसका उत्तर नकारात्मक ही होगा। खैर उसपर मेरा मन उलझ गया। क्या ही गँठीला तथा सुन्दर शरीर था उसका यदि सींक से भी खोद दिया जाय तो रक्त निकल आने की आशंका थी।

"युवती मुझे वेश्या जान पड़ी। उसकी अस्मतें प्रायः नष्ट हो चुकी थीं। नजाकत एवं अदा की तीरें वह बार-बार युवक पर छोड़ रही थी पर युवक था ज्यों का त्यों। निश्चय मन तथा नीचे बहने वाले जल को बदलने की शक्ति किसमें है ?" कहते-कहते वह चुप हो गई।

"तूने निशाना भी लगाया बहन !" तो उड़ती हुई चिड़िया पर। पता नहीं वह कहाँ का है, क्या करता है तथा कहाँ रहता है। खैर घड़े भरो और चलो अब चला जाय, देर हो रही है, मातायें बिगड़ने लगेंगी। लीला ने कहा।

दोनों कंधे पर घड़े ले चल पड़ीं। पास में ही सुखपुरा नामक एक गाँव था। बस्ती थी अहीरों की वह। वहीं के अदलू तथा बदलू नामक दो अहीरों की लीला तथा लाड़ली पुत्रियाँ थीं। शहर से केवल तीन-चार ही मील पर होने के कारण उनका नगर से पूरा सम्बन्ध था। दूध दही बेचने तथा गोंइठा से भी पैसे प्राप्त करने के लिये उन्हें बराबर आना पड़ता था।

लीला तथा लाड़ली जन्म से ही साथ रह आई' थीं अतः उनमें पूर्ण प्रेम हो चला था। एक दूसरे को बिना एक दिन भी देखे उनका दिन कटना मुश्किल हो जाता।

दोनों चली जा रही थीं अपने घर की ओर।

घर पहुँचते ही लाड़ली की माँ ने पूछा, "अब तक क्या कर रही थी रे?"

"लीला से भेंट हो गई थी माँ!"—उत्तर था।

"कौन लीला?"

"वही जिसे भाभी कहूँगी एक दिन।"

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकेगा।"

"गिरिधर भी उससे सहमत रहते हैं माँ!"

"इससे क्या बेटी! हम जिससे चाहें अपने लड़के की शादी करें। जब हमने लड़का पैदा किया पाला, पोसा, बड़ा बनाया तो उसपर हमारा हर प्रकार से अधिकार है।"

"पर अधिकार का दुरुपयोग न करना चाहिये?"

"तो यह दुरुपयोग नहीं बल्कि सदुपयोग है। ज्यादा बक-बक न करो, जल्दी जा भोजन बना। एक तो अपने ही देर करके आई दूसरे बहस भी ठान दिया। गिरिधर आता होगा तब पता नहीं उसे क्या खिलायेगी।"

लाड़ली अपने कार्य में लग गई।

❀

# [१२]

सुखपुरा गाँव छोटा ही गाँव था, वहाँ का चौधरी था फिरंगी अहीर। गाँव में उसकी खूब मर्यादा थी। सभी उसके नाम से थर्रा जाते थे। जिस समय वह युवक था, भिन्न-भिन्न प्रकार की करामातें दिखलाया करता था। स्टार्ट की हुई कार को रोक देना उसके लिये एक सहज कार्य था। परन्तु अब उसकी अवस्था लगभग अस्सी के हो चली थी। इन्द्रियों में यद्यपि पहले वाली शक्ति नहीं थी परन्तु फिर भी वह आधुनिक दस व्यक्तियों को तनहा मारने की सामर्थ्य रखता था। पश्चिमी सभ्यता में प्रविष्ट हो अपने शरीर को िल्कुल नष्ट कर देने वाले आज कल के युवक धन्यवाद दें धोबी तथा दरजियों को। पहले हमारे पूर्वज शरीर में मिट्टी लपेट उसे निरोग तथा स्वस्थ्य बनाया करते थे परन्तु आज क्या होता है? शरीर में वीर्य तो है नहीं, मुखमंडल पर आभा है नहीं पुनः प्रयत्न किया जाता है सुन्दरता लाने की पाउडर तथा स्नो के द्वारा। स्त्रियों की सभ्यता तथा रहन-सहन अपनाते हुए आधुनिक युवक जनानापन को बड़ी चीज समझ रहे हैं।

मूछें कटाकर, बाल सँवार, हाव-भाव से युक्त इस चाल से नगर में चलते हैं मानों उन्हें भी मोहित करना है किसी पुरुष को। पर फिरंगी में यह बातें न थीं। उसकी बड़ी-बड़ी मूँछें अतुलनीय थीं। उन्हें खड़ी कर उनपर दोनों ओर रुपया भी रख सकता था और वे गिरते न थे। वह फिरंगी था।

फिरंगी की गाँव में खूब चली थी। संध्या समय भोजनोपरांत प्रायः सभी व्यक्ति उसी की दालान में आ रंग उड़ाते थे। लोरकी, बिरहा

रात भर ( कभी-कभी ) होता ही रह जाता था। लग्न के दिन में दूर-दूर तक के लोग उसके यहाँ आते थे। उसके जातीय तो आते थे उसके यहाँ निमंत्रण देने तथा शिफारिस करने बारात इत्यादि में जाने के लिये। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का भी इस समय उसके यहाँ जमघट लग जाता है। कोई १५ कोस से तो कोई २० कोस तक से भी पहुँच जाता था उसके यहाँ। कारण यह था कि दूध-दही की समस्या उसी के यहाँ सुलझती थी अन्यथा नहीं। खूब चली हुई थी उसकी। वह गाँव में एक था।

चौधरी की बेटी का नाम था बीना। यद्यपि वह लाड़ली तथा लीला की सखी ही थी परन्तु इससे उनसे वैसी घनिष्ठता न थी। बीना से प्रेम करने वाला एक व्यक्ति था जिसका नाम था कुटिल। बीना भी उसे चाहती थी। वे दोनों एक दूसरे को चाहते थे पर इससे क्या ? माता-पिता तो नहीं चाहते थे। जब तक माता-पिता न चाहेंगे विवाह कैसे हो सकता है। विवाह करना है लड़के को, पर कन्या के विषय में तय करेंगे पिताजी। कन्या की उत्तमता तथा पतितता उनकी आँखों से देखी तथा परखी जायेगी।

यही है हमारे समाज की दशा। पता नहीं यह कहाँ का न्याय है ? लड़के बी० ए० तथा एम० ए० पास हैं और घर में पिता-माता की अनुकम्पा के फलस्वरूप आती हैं—हाथ भर का घूँघट काढ़ने वाली, निरक्षर भट्टाचार्या श्रीमतीजी। जीवन-सहचरी चुनने में दूसरे के नेत्रों का योग लिया जाय यह अनुचित है। अमान्य है। देखें इसे समाज कब दूर करता है ?

यही हाल बीना के विवाह के बारे में भी था। बीना का हृदय कुटिल से लगा हुआ था। परन्तु फिरंगी तथा उनकी श्रीमती को यह बात पसंद न थी। यहाँ तक कि फिरंगी हठात् यह न करने पर तुला

हुआ था। फिरंगी चाहता था कि बीना का विवाह गिरिवर से हो जाय यद्यपि गिरिवर इससे इनकार कर रहा था। गिरिवर के पिता को भी पूर्ण अप्रसन्नता थी इसलिये कि उसका पुत्र चौधरी की बातों का खंडन कर रहा था। परन्तु गिरिवर को तो क्या करे ? उसके पास एक ही तो हृदय था वह भी किसी को दिया जा चुका था और वह थी लीला। भला तब कैसे सम्भव कि गिरिवर अपना विवाह बीना से करे।

चौधरी की दालान में जमघट लगा हुआ था। बिरहा चल रहा था। कुटिल धीरे से आ लोगों की नजरें बचाता हुआ पहुँच गया बीना के पास। बीना उसकी प्रतीक्षा कर ही रही थी। दो बिछुड़े हुए हृदय मिल गये।

"तुम्हारा-हमारा विवाह यहाँ सम्भव नहीं प्रतीत होता" कुटिल ने कहा।

"पुनः कोई उपाय सोचिये। मैंने तो अपना सर्वस्व आपको समर्पित कर दिया है।"

"मैं भी तुम्हारा ही हूँ प्रिये।" दोनों मिल गये।

## [ १३ ]

रात भर की निचोड़ी हुई कुतियों को यदि हम भास्कर के प्रकाश में देखें तो यही ज्ञात होगा कि उनमें लावण्य का लेशमात्र भी नहीं। पर उन्हीं के लिये कुत्ते मर-मर जीते तथा जी-जीकर मरते हैं। पता नहीं चलता कि पुरुष इतने पतित क्यों?

प्रातःकाल के सर्द झकोरों में सभी को नींद आ ही जाती है तो भला वे क्योंकर जगें। चद्दर तान नूरजहाँ भी सोई हुई थी। आठ बज चले पर उसकी इच्छा नहीं होती थी कि वह जगे।

राहत आकर चारपाई पर बैठ गया एवं कहने लगा, "नूर! उठो, उठो, आठ बज गये।"

"ऊँ हूँ, ऊँहूँ" के साथ नूरजहाँ उठकर बैठ गई। देखती क्या है राहत उसकी चारपाई पर बैठा हुआ है। उसने अपना शरीर राहत की गोदी में लिटा दिया।

राहत ने नूरजहाँ के अंग-प्रत्यंगों पर हाथ फेरते हुए पूछा, "क्यों नूर! कल तुझे तो वह बड़ा ही मक्खीचूस शिकार मिला था उसके बारे में क्या है, तूने कुछ बतलाया भी नहीं।"

क्या कहूँ जनाब! वह एक विचित्र ही पुरुष है। मैंने अपनी नजाकत तथा अदाओं की सभी तीरें छोड़ीं पर क्या मजाल कि वह तनिक भी टस से मस होता। हा इतना अवश्य है कि चलते समय उसने ५० रुपया मात्र दिया। परन्तु इससे क्या? वैभव को नष्ट कर, प्रतिष्ठा पर कलंक लगा दर-दर भीख मँगानेवाली को ही हम वैश्या कहते हैं। हम भी तो वही हैं। उसे पाठ अवश्य पढ़ायेंगी।"

"नूर ! तुम इन विचारों को स्वप्न में भी न लाना। वह पक्का आवारा है परन्तु अन्य आवारों की भाँति उसके नेत्र अकर्मण्य हैं ऐसा नहीं। बहुतेरी वेश्याओं से उसने सम्बन्ध किया परन्तु उन्हें ठुकरा दिया भोजन में गिरी हुई मक्खी के समान। हाँ इतना अवश्य है कि वह प्रेम का पुजारी है यदि उसे कहीं प्रेम मिला तो उसमें वह अवश्य लिपट जायेगा। तुम उसे फँसाने की डींग हाँक रही हो, मुझे डर है कहीं तुम्हीं न फँस जाओ।"

"आप भी उटपटाँग बातें किया करते हैं। इतने लोग आये सब से सम्बन्ध हुआ मैं क्यों नहीं फँस गई, इसका भी ध्यान है ?"

"परन्तु सब में और उसमें बहुत फर्क है। सभी तुम्हारे यहाँ आये तुम पर जलकर मरने के लिये लेकिन याद रखो, वह तुम्हारे यहाँ आता है तुम्हें जलाकर मारने के लिये। उसके सुगठित, सुडौल एवं सुन्दर शरीर को देख भला कौनसी औरत होगी जो कुछ क्षण के लिये चिंतित न हो जाय ?"

"जब ऐसा ही होने लगे तब तो यौवन का बाजार ही फीका पड़ जाय, हमारी कुछ प्रतिष्ठा ही न रह जाय। हमारा स्त्रित्व ही मिट जाय। मैं वेश्या हूँ, मेरी जो परिभाषा है उससे मैं परे नहीं, कहती हुई नूरजहाँ ने अपना शरीर पूर्णरूपेण राहत की गोदी में लिटा दिया।

राहत उसके अंगों पर हाथ फेरने लगा और कहने लगा साथ ही, "अब बुढ़ौती में मुझ से क्यों रगड़ कर रही हो नूरजहाँ ! मेरी कामेन्द्रियाँ अब शिथिल हैं।"

"आप हमेशा मज़ाक ही किया करते हैं, क्या मैं आपसे रगड़ कर रही हूँ ? नूरजहाँ ने उत्तर दिया तत्पश्चात् उसे बुढ़ापे शब्द का ध्यान हो आया। इनकी कामेन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं इसका क्या अर्थ ? यही कि अब इनके अन्दर वासना की बू नहीं रही। कभी ये भी युवक

रहे होंगे, इनके अन्दर भी यौवन की वही तरंगे रहीं होंगी पर आज समय वशात परिस्थिति कुछ भिन्न ही है।

"बुढ़ापा यौवन पर विजय प्राप्त करता है" बिल्कुल सही है। आज मेरी सुन्दरता [illegible], मुझ से आनन्द प्राप्ति की कामना वाले बहुत हैं पर बुढ़ापे के समय ? कदाचित् कोई रईस मेरी ओर मुड़कर भी न देखेगा। अनारों की भाँति इन गालों में गड्ढे रहेंगे, नेत्रों से आधुनिक मादकता उस समय तक नहीं रहेगी। तब तिरछी चितवन पर हँसने वाले, अदाओं की तीर से घायल हो जल कर मरने वाले नहीं रहेंगे। यह चहल-पहल, यह रंगरवैया तब कहाँ होगी ? तब तो व्यर्थ है यौवन साथ ही व्यर्थ है मेरा जीवन। पर वास्तविक प्रेम में ये बातें नहीं। यौवन में भी एक गृहस्थ का प्रेम अपनी धर्म-पत्नी के लिये वैसा ही रहता है जैसा बुढ़ापे में। उसमें न्यूनता है ही नहीं क्योंकि वही है वास्तविक प्रेम। बालकृष्ण भी इसी प्रेम का पुजारी बनना चाहता है। जहाँ भी प्रेम देखेगा, पूजनार्थ बैठ जायेगा। सत्य है उसी का जीवन।"

ये सब कार्य नूरजहाँ के मानसिक जगत में हुए। इसे लिखने तथा पढ़ने में समय अवश्य लगता है पर उस जगत में इस कार्य की पूर्ति सेकेन्ड के किस अंश में हुई नहीं कहा जा सकता।

"कुछ सोच रही हो क्या नूर"—पूछा राहत ने।

"जी हाँ! बालकृष्ण के साथ किये गये नाव-क्रीड़ा का ध्यान हो आया था।"

"अच्छा जाओ नित्यक्रिया से मुक्त हो स्नान इत्यादि कर लो, पुनः कुछ रेयाज किया जायेगा।"

नूरजहाँ उठ पड़ी। उसने देखा घड़ी की ओर। साढ़े आठ बज रहे थे।

× × ×

नित्य क्रिया से मुक्त हो नूरजहाँ अपने कमरे में लगे हुए शीशे के सामने खड़ी हो बाल सँवारने लगी। पुनः उसे गर्व हो आया अपनी सुन्दरता पर। गत 'दर्शन' उसे भूल गया अथवा झूठा जान पड़ा। निर्जीव कंघी भी, उसकी लावण्यमयी छटा पर मोहित हो, दौड़ने लगी उसके केशों पर तेजी से। केश उसके लहरा रहे थे। उनकी यह क्रिया सर्पिणियों की लपलपाहट-सी जान पड़ी।

मुँह पर स्नो तथा पाउडर दौड़ने लगे; कोमल करों के स्पर्श से। धन्यवाद है इन कृत्रिम उपादनों को भी, जिन्हें मुँह पर लगा लोग सुन्दरता लाना चाहते हैं। पर उन्हें पता नहीं कि इसका असर कुछ भिन्न ही होता है। नूरजहाँ अपना श्रृंगार कर रही थी।

अब 'लिपस्टिक की बारी आई। इतने में दरवाजे पर धक्का लगा।

"क्या मैं आ सकता हूँ" कहता तथा हँसता हुआ बालकृष्ण नूरजहाँ के कमरे में प्रवेश किया। उसी दम व्यग्रता-युक्त आतुरता से नूरजहाँ ने कहा था—

"कृपा करने में भी पूछना ?"

नूरजहाँ को महान् प्रसन्नता हुई। उसे अपने कार्यों में सफलता-सी जान पड़ी। "आपने इस ग़रीब के डेरे पर आने की क्यों तकलीफ़ किया, यदि हुक्म पाई होती तो मैं खुद स्वयं ही सेवा के लिये उपस्थित होती" कहा उसने।

बालकृष्ण हँस पड़ा। उसने कहा, "नूरजहाँ! तुम ग़रीब हो ? नहीं, तुम्हारे पास वह धन है जिसके लिये पूरा शहर तरसता है।"

"खूब फरमाया सरकार ने" कहता हुआ उन्हें अवसर देने के लिये राहत बाहर चला गया। नूरजहाँ बालकृष्ण को साथ ले शयनागार में पहुँची। वह मखमली मोटा बिछौना, उसपर चमकती हुई वह स्वच्छ चादर हँस पड़े अपनी ही ओर आते हुए दो तृषितों को।

दोनों बैठ गये ।

"जलपान करके आये हो न कुँवर" पूछा नूरजहाँ ने ।

"खूब, खूब । जलपान की सामग्रियाँ तो तुम लेकर चली आई, मैंने फिर जलपान किया कैसे"—कहता हुआ बालकृष्ण ने नूरजहाँ को अपनी ओर खींच लिया । चुम्बन लेना ही चाहता था कि नूरजहाँ बोल उठी "नहीं, नहीं, कुँवर ! अभी "लिपस्टिक, सूखी नहीं है अतः तुम्हारे ओष्ठों पर भी रंग चढ़ आयेगी ।" वह रुक गया ।

"कुँवर मैं तुम्हें दिलोजान से चाहती हूँ । मेरी सम्पूर्ण वस्तुएँ तुम्हारे लिये न्यौछावर हैं ।"

"तुम्हारी नजाकतें भी ?"

"जी हाँ ।"

"अदायें भी ?"

"जरूर ।"

"और अस्मतें ?"

"सभी कुछ ।"

"हृदय के कपट तथा प्रतिष्ठा नष्ट कर भाल में कलंक का टीका लगाने की आशायें भी ?"

"जी हाँ" हँसते हुए नूरजहाँ ने उत्तर दिया था' पर उसका हृदय मसोस कर रह गया । कितनी खरी सुनाने वाला है यह कुँवर, वह बार-बार सोचने लगी ।

नूरजहाँ ने आलमारी खोल शराब की बोतल निकाली । कार्क हटा उसे चाँदी के जाम में उँडेल बालकृष्ण के अधरों की ओर बढ़ाया ।

कुछ पी लेने के पश्चात् उसने नूरजहाँ से भी पीने का आग्रह किया । नूरजहाँ ने भी उसकी बातें सहर्ष स्वीकार कीं । यद्यपि यह सब बातें चल रही थीं पर नूरजहाँ का हृदय मानसिक व्यथा से जल रहा था । "उसके हृदय में कपट है, प्रतिष्ठा नष्ट कर भाल में कलंक का टीका लगाने की

आशा है" कहा था उसके लिये बालकृष्ण ने। वह बार-बार इन्हीं बातों को सोच रही थी।

"मुझे आपका साथ बड़ा ही प्यारा है, कुँवर!" कहा उसने।

बालकृष्ण ने नूरजहाँ को और भी आगे खिसका लिया और देखने लगा एक टक उसके अधरों की ओर। मानों वह जानना चाहता था कि अभी लिपस्टिक सूखी या नहीं।

× × ×

दो घंटे व्यतीत हो चले। बालकृष्ण की तृषित इन्द्रियाँ तृप्त हो गईं। ४० रुपये नूरजहाँ के हाथों में रखकर वह खट-खट नीचे उतर गया।

राहत ने आकर कहा, "क्यों नूर! क्या हाल है?"

नूरजहाँ का मुखमण्डल लाल हो गया था क्रोध भरे शब्दों में उसने कहा, "उसने मुझे बेइज्जत किया है।"

"पर वेश्याओं की इज्जत ही कहाँ नूर! तुम्हें तो कोई भी चाँदी के ठीकरों के बल पर बेइज्जत कर सकता है। अच्छा यह बतलाओ कि उसने हरकतों से बेइज्जत किया है या केवल बचनों से?"

"बचनों से"—संक्षिप्त उत्तर था।

"इन सब बातों को सोच छोड़ो। जाओ भोजन करो। भोजन तैयार है" कहा राहत ने नूर से।

"परन्तु मैं बदला लेना चाहती हूँ जनाब!" "तो बस वेश्याओं का ढंग अपनाओ। उसे फँसाये रहो अपने में, रुपया चूसती रहो पुनः उसे ठुकरा देना। यही साधन केवल तुम्हारे पास है और कोई दूसरा शायद लागू भी नहीं हो सकता।"

"अच्छा; ठीक है"—कहती हुई भोजनार्थ नूरजहाँ नीचे उतर आई।

❁

# [ १४ ]

जिस समय बालकृष्ण नूरजहाँ के कोठे से नीचे उतरा उसने शोफर को प्रतीक्षा करते हुए पाया। नई कार चमचमाती हुई खड़ी थी शोफर ने कार से नीचे आ झट दरवाजा खोल दिया एवं बालकृष्ण कार में सवार हो चल पड़ा अपने बँगले की ओर।

थोड़ी ही देर में कार उसके बँगले पर पहुँच गई। झट कार से उतर बालकृष्ण अपने कमरे में पहुँचा। नौकर बरना ने देखा कि छोटे सरकार आ गये। झट चाय की ट्रे लाकर सामने रख दिया और खड़ा हो आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा।

"बरना!" पुकारा बालकृष्ण ने।

"जी।"

"आमलेट लाओ"—आदेश था।

तुरत बरना गया तथा दो आमलेट भी लाकर रख दिये। आमलेट पर हाथ फेर बालकृष्ण ने हाथ मुँह धोया। तत्पश्चात् कोच पर जा सो रहा। कुछ इधर-उधर की सोच ही रहा था कि फ़ोन की घंटी बजी। बालकृष्ण ने तुरत जा रिसीवर उठा लिया। बालकृष्ण के पिताजी फोन से बोल रहे थे। जिसे हम उन्हीं शब्दों में यों रख रहे है।

"बेटा बालकृष्ण! तुम्हें अपनी गृहस्थी सँभालने की अब चिंता करनी चाहिये। आज तुम्हें मैंने बारह बजे दूकान पर बुलाया था परन्तु तुमने मेरे वचनों का पालन नहीं किया। मुझे इसके लिये खेद है, चिंता है तथा ग्लानि है। मैं यह भी नहीं सोच सका हूँ कि आखिर तुम मेरी मृत्यु के बाद कैसे सब कार्य सँभाल सकोगे—

देखो, जीवन में सफल होने के लिये मनुष्य को सब से पहले अपना आचरण सुधारना चाहिये। आचरण की सभ्यता प्रभुत्व, कला एवं प्रतिष्ठा सबसे अधिक ज्योतिष्मती है। इसी के सहारे मनुष्य संसार में सभी कुछ करता तथा कर सकता है।

बेटा! आचरण बनाने के लिये सबसे पहले हमें सुरा तथा शय्या का त्याग करना आवश्यक है।

सुरा वह वस्तु है जिसे पी मनुष्य मस्त हो जाता है। मनुष्य शरीर में जब मस्ती आ जाती है तो उस समय उचित और अनुचित कुछ भी नहीं सूझता। वैभव वह बरबाद कर डालता है और अधिक क्या कहा जाय कलंक का टीका मस्तक पर लगा दर-दर ठुकराता फिरता है। शराब पीने से, बेटा! शरीर कमजोर हो जाता है। कमजोरी अपनी सभी महसूस करते हैं परन्तु विवश रहते हैं आदत के चलते। उन्हें खाने के लिये भले ही कुछ न मिले परन्तु पीने के लिये शराब का मिलना आवश्यक हो जाता है। अधिक शक्ति-हीन हो मनुष्य हठ करता है, दो दिन किसी प्रकार रह सकता है परन्तु तीसरे दिन पुनः वही बातें। जिस प्रकार प्रसव-कालीन वेदना से पीड़ित हो एक स्त्री पुनः पुरुष-मिलन न करने की प्रतिज्ञा करती है उसी प्रकार शराबी भी दिन प्रतिदिन प्रतिज्ञा करता है परन्तु पीना छूटता ही नहीं।"

वे कहते गये, बालकृष्ण ध्यान से सुन रहा था। पुनः उन्होंने कहा,

"अपने जीवन में, प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह वेश्याओं से अपने को पूर्णतया बचाये। इनसे बढ़कर घातक तथा नाशक संसार में कोई भी वस्तु नहीं। वैभव तो सब चूस ही लेती हैं, मनुष्य मांस रक्त से भी क्षीण होता हुआ अपने को सत्यानाश के गर्त में एक न एक दिन गिरा ही देता है। ये मोम के समान हैं बेटा। परन्तु मोम की तरह पिघलना न जान ये पिघलाना जानती हैं। इनकी लौ पर फतिंगे

जल-जलकर मरते तथा मर-मरकर जीते हैं। अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिये, अपने वैभव की रक्षा करने के लिये हर मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह उनकी ओर देखे भी नहीं। इनका मायाजाल बड़ा ही मनमोहक होता है। इसमें एक बार जो फँसा कि फँसा ही रह गया फिर उससे निकलना टेढ़ी खीर हो जाता है।

जाल में फँसा हिरण जिस तरह और भी जकड़ लिया जाता है यदि वह निकलने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार वेश्यागामी पुरुष भी होता है।"

श्रीकृष्ण बाबू बड़े ही शांत स्वभाव वाले एवं गम्भीर व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण नगर में प्रशंसनीय था। अपने पुत्र को इस प्रकार उपदेश दे उन्होंने बाद में यह कहा, "अब जल्दी यहाँ आओ। कुछ कार्य तुम्हें सिखाना है।"

"अच्छा पिताजी, "उत्तर दिया बालकृष्ण ने।

कार बाहर लाई गई। बालकृष्ण ने ड्राइव किया। थोड़ी ही देर में कार एक बँगले पर पहुँच रुक गई। बँगले के अग्रभाग में साइनबोर्ड लगा हुआ था—सेठ श्रीकृष्ण ऐंड सन्स, जामगंज बाँकुड़ा।

बँगले के अन्दर प्रवेश कर बालकृष्ण गद्दी पर पहुँचा उसके पिता ने उसे कुछ आवश्यक कार्य से बुलाया था। उन सम्पूर्ण कार्यों का विवरण देते हुए श्रीकृष्ण बाबू ने बालकृष्ण को पूरा-पूरा समझाया। तत्पश्चात् उसे छुट्टी मिली।

पिता के यहाँ से छुट्टी पा बालकृष्ण तुरत अपने बँगले पर आ पहुँचा। आते ही अपने कमरे में जा कोच पर लेट गया। नौकर ने भोजन लाकर 'टेबुल' पर रखा। रखते समय उसने कहा भी, "सरकार भोजन कर लें नहीं तो ठंडा हो जाने पर सारा स्वाद जाता रहेगा। स्वाद के जाने की बात सुन बालकृष्ण तुरत उठ पड़ा एवं भोजन करने लगा।

भोजन कार्य-समाप्त हुआ। आज बालकृष्ण अपने पिता की शिक्षा से पूर्ण प्रभावित था अतः उसने कहीं घूमने जाने के विचार को भी स्थगित कर दिया। पुनरपि कोई उतना सबेरा तो था नहीं, नौ बज रहे थे। बालकृष्ण कोच पर जा सो गया।

✿

# [ १५ ]

प्रातः होने ही वाला था। हाँ, ऊषा की छटा अवश्यमेव दृष्टिगोचर हो रही थी। पुरवा हवा के झँकोरे चल रहे थे। उसी समय लाड़ली सर पर खँचिया रखे ( खँचिया में दूध तथा उपले थे ) चली जा रही थी नगर की ओर।

थोड़ी देर बाद—

प्रातः हुआ। बाल-पतंग के दर्शन से सम्पूर्ण संसार ने अपने को धन्य माना। सभी अपने-अपने कामों में लगने के लिये तैयार होने लगे। कमल खिल उठे। कमल कहाँ थे ? थे खिले हुए नगर के पूर्व दिशा में स्थित उसी तालाब में। आप इस तालाब से पूर्णतया परिचित हैं।

तालाब के किनारे जा लाड़ली रुक गई। खँचिया सर से उतार उसने एक दतौन उसी में से निकाला जनाने घाट की ओर जा उसने दतौन तथा स्नान किया। इन सब क्रियाओं से मुक्त हो लाड़ली ने घर से लाई हुई रोटी खा जल पीया। थोड़ी देर आराम कर वह पुनः चल पड़ी नगर में दूध तथा उपले बेचने के लिये।

उर्दूबाजार में पहुँचते ही एक हलवाई ने उसके सब उपले ले लिये। वह आगे बढ़ी।

लाड़ली के जामगंज मुहल्ले में पहुँचते ही लड़के चिल्ला उठे "दूध वाली! दूध वाली!" सभी अपने माँ-बाप से आग्रह करने लगे कि वे उनके लिये दूध खरीद लें।

बहुत से लड़के घिर आये, लाड़ली ने अपनी खँचिया सर से उतार

नीचे रखा। वह पुरवे में भर-भरकर दूध बच्चों को पिलाने लगी। दूध बच्चे पीते जाते थे और प्रसन्न हो पैसे दिया करते थे।

मनचले चार युवक उधर से आ निकले। वे सभी शराब के नशे में मस्त थे। बकबक करते वे चले जा रहे थे परन्तु बच्चों की प्रसन्नता-मयी वाणी ने उन्हें आकर्षित किया। वे लाड़ली को देख दंग रह गये।

"गुदड़ी में भी लाल छिपा रहता है" एक ने कहा।

"जी हाँ, दिन में भी चन्द्रमा दिखलाई पड़ ही जाया करता है"—दूसरे ने कहा।

तीसरा बोला, "क्या ही हुश्न है!"

"नजाकत तथा अदायें भी तो कम नहीं हैं"—चौथे ने कहा।

वे चारो आगे बढ़े और लाड़ली के यहाँ खड़े हो गये।

"दूध पिलाओ, चारो आदमियों को एक-एक पुरवा लाओ"—एक ने कहा।

"पहले आपलोग पैसे दीजिये"—बड़ी नम्रता से कहा लाड़ली ने।

"पैसे तुम्हारे लेकर हम भागेंगे नहीं तुम इतनी डर क्यों रही हो? मालूम होता है आज पहले ही पहल चली हो दूध बेचने।"

"जी नहीं, डरने की बात नहीं। परन्तु जो कायदा है वही न करना होता है"—कहा लाड़ली ने।

"हाँ भाई यह बात तो सही है पहले देकर ही तो लिया जाता है"—एक ने कहा। सभी हँस पड़े।

लाड़ली डर गई। उसका कलेजा काँप गया। लगी कहने "भगवन्! ये दुष्ट कब यहाँ से हटेंगे?"

लाड़ली ने उन्हें दूध देना प्रारम्भ किया। दूध लेते ही समय एक ने उसके अंगों की ओर हाथ बढ़ाया। वह उसे बीच में ही रोक बोल उठी, "क्यों रे दुष्ट! तुम्हारी बहन बेटियाँ नहीं हैं क्या, उनकी इज्ज़त जाकर क्यों नहीं बिगाड़ते?"

गुंडे बिगड़ उठे। उन्होंने कहा, "शराफत से दूध पिलाओ। अभी-अभी रुपया भी ले लिया और दूध पिलाने के लिये आना-कानी कर रही हो?"

अधिक बोला कि बेइज्जत कर दी जावेगी।" इसी बीच एक ने कहा, "अब अधिक क्या कहा ही जा सकता है। बहन-बेटियों को बेइज्जत करने के लिये तो अभी ही इसने कहा है। चलो इसे घसीट ले चलें तब दूध खूब छक कर पीया जावेगा।"

"ठीक ही है"—सभी ने कहा।

वे उसे घसीटने लगे। वह चिल्ला उठी। लाड़ली का चिल्लाना सुन बालकृष्ण ने सहसा अपने वातायन से सड़क की ओर देखा। देखता क्या है कि चार गुंडे एक षोडशवर्षीया अति सुन्दरी को बेइज्जत करना चाहते हैं। वह ऊपर से बोल उठा, "ठहरो" गुंडे लाड़ली को छोड़ ठहर गये। क्या मजाल थी कि वे एक कदम भी आगे बढ़ें। शीघ्रता से बालकृष्ण उतरने लगा।

गुंडों के सामने आते हुए उसने पूछा, "तुम लोग एक अबला को मेरे ही बँगले के निकट क्यों बेइज्जत कर रहे थे?"

वे चुप रहे, किंकर्त्तव्याविमूढ़ रहे, उन्हें उत्तर देने की बात समझ में ही न आ रही थी। एक टक वे बालकृष्ण का मुख देख रहे थे मानों आदेश चाहते हों कि वे चले जायें।

बालकृष्ण आगे बढ़ा। एक गुंडे को पकड़ दो तमाचे जड़ दिया साथ ही कहा भी, "भाग जाओ नालायक।" सभी भग चले। लाड़ली कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखने लगी बालकृष्ण को। उसने मन ही मन कहा, "पता नहीं यह व्यक्ति मुझे पूर्व परिचित से जान पड़ रहे हैं पर ज्ञान नहीं है कि आखिर मैंने इन्हें कहाँ देखा है। वह सोच रही थी इधर-उधर की।

इसी बीच बालकृष्ण बोल उठा, "देखो तुम्हें कुछ अपनी इज्जत

का भी ख्याल करना चाहिये। यदि तुम्हें इसका खयाल है तो फिर दही-दूध बेचने ही न आओ अन्यथा कोई बात नहीं। इतनी बड़ी हो गई यौवन हिलोरें लेने लगा और चली है दूध-दही बेचने। क्या तुम्हें पता नहीं है कि सुन्दरता भी एक खतरनाक वस्तु है।

बालकृष्ण बकता जा रहा था। लाड़ली सुनती जा रही थी। कुछ समय बाद उसने कहा, "आखिर पेट की समस्या कैसे हल होगी बाबूजी! यदि मैं दूध तथा उपले न बेचूँ तो और आवश्यक सामान क्योंकर खरीदूँ।"

लाड़ली के बचनों में मिठास थी। उसकी सम्पूर्ण बातें सच जान पड़ीं।

बालकृष्ण ने डाँटते हुए कहा, "जाओ अपना कार्य करो। लाड़ली चल पड़ी। उसके नेत्रों से आँसू बरस रहे थे। उन आँसुओं को देखा बालकृष्ण ने। उसके हृदय में दया उमड़ आई। उसने स्वतः ही कहा, "मैंने एक निर्धन अबला पर अत्याचार किया।" झट उन्होंने पुकारा "बरना! ओ बरना!!" "जी हाँ" कहता हुआ तुरत बरना उपस्थित हुआ।

"देखो उस दूध वाली से कह दो कि चलो सरकार बुला रहे हैं, दूध पीयेंगे"—कहा बालकृष्ण ने।

बरना दौड़ पड़ा और जाकर उसने उक्त बचन लाड़ली से कहा।

इस समय लाड़ली यह भी समझ गई थी कि नौका दृश्य का पुरुष यही है। महान् उल्लास से उसका हृदय भर आया जब उसने सुना कि दूध पीने के लिये सरकार बुला रहे हैं। वह आतुरता से चल पड़ी। परन्तु शहरों के गुंडों के व्यवहार से दुःखित उसके हृदय में बालकृष्ण के प्रति भी आशंका हो गई। वह आकर खड़ी हो गई। कुछ ही समय बाद उसने कहा, "सरकार ने मुझे बुलाया है।" "हाँ याद आया,"—कहा बालकृष्ण ने, "मैंने तुम्हें बुलाया है दूध पीने के लिये। जरा पिलाओ तो देखें कैसा तुम्हारा दूध है।"

लाड़ली ने सहर्ष पुरवे में दूध उडेल कर दिया। गट-गट सब दूध बालकृष्ण पी गया। बड़ा ही मीठा दूध है क्यों पानी नहीं मिलाती हो क्या''—पूछा उसने।

''जी नहीं पानी मिलाने पर फिर मेरे दूध को पूछने वाला कौन रहेगा''—लाड़ली ने कहा।

''बहुत ठीक,'' बालकृष्ण ने कहा ''तुम्हारा नाम क्या है कहाँ की रहने वाली हो ?''

''लोग मुझे लाड़ली, कहते हैं, मैं सुखपुरा की रहने वाली हूँ।''

''वही सुखपुरा न जो नदी के किनारे बसा है ?'' पूछा बालकृष्ण ने लाड़ली से।

''जी हाँ।''

बालकृष्ण दूध पी चुका था। दूध पीने से उसे पहली प्रसन्नता हुई। कुछ देर तक वह सोचता रहा—

दूध गलियों-गलियों बिक रहा है परन्तु शराब एक जगह शान से बैठकर।

''अच्छा लाड़ली ! तुम मुझे दूध पिला जाया करना''—कहते हुए बालकृष्ण ने उसे दश रुपये का एक नोट दिया।

''मैं इतने रुपये लेकर क्या करूँगी सरकार ! मुझे केवल पाँच आने पैसे ही दीजिये !''

''नहीं, नहीं, ले जाओ। तुम्हारे कहीं काम आ जायेगा''—बालकृष्ण ने उत्तर दिया। ''अच्छा जाओ''—पुनः उसने कहा।

लाड़ली चल पड़ी। उसके पीछले भाग में साड़ी बिल्कुल फटी हुई थी। बालकृष्ण ने देखा उसे। उसने कहा, ''लाड़ली ! ठहरो।'' वह ठहर गई !

''देखो तुम्हारी साड़ी बिल्कुल फट गई है। तुम बरना के साथ जाओ यह तुम्हें एक जोड़ा साड़ी खरीद देगा तुम लेकर चली जाना।''

बरना को उन्होंने दश रुपया दिया। बरना बाजार चला। उसने साड़ी खरीद उसे दे दिया। वह चली गई।

रास्ते में वह सोचती जा रही थी "अभी भी लोग गरीबों की दशा पर तरस खाने वाले हैं। परन्तु बड़े लोग बहुत कम ऐसे पाये जाते हैं। उनमें तो अभिमान तथा ईर्ष्या पाई जाती है। परन्तु यह बड़े ही दयावान हैं। हाँ इतना अवश्य है कि उन्हें गरीबों से घृणा सी भी जान पड़ती है पहले मुझे कैसे डाँटा था भुलाया नहीं जा सकता।"

इसी प्रकार की अन्य बहुत बातें सोचती चली जा रही थी लाड़ली। अपने घर पर पहुँचते ही उसने पूछा—"गिरिवर भइया अभी नहीं आये माँ?"

"नहीं बेटी! अभी तो नहीं लेकिन अब आते ही होंगे"—कहा उसकी माँ ने।

वह भोजन बनाने लगी।

# [ १६ ]

लाड़ली की आखों में आँसू थे। गुंडों द्वारा उसकी वह बेइज्ज़त, बालकृष्ण का डाँटना सभी उसके सामने एक-एक कर आ रहे थे। पुनः वह सोचती थी अभी भी कुछ धनी ऐसे हैं जिनके अन्दर गरीबों के लिये सहानुभूति है। क्या ही बढ़िया पुरुष है वह। उससे मेरी फटी साड़ी न देखी जा सकी उसने मुझे इसलिये एक जोड़ा साड़ी भी खरीद दिया।

वह सो रही।

वह प्रातः मुस्कराता हुआ वही बाल पतंग। सभी प्रसन्न हुए। पर जब लाड़ली सरिता तट से घड़ा सर पर उठाये चली आ रही थी उसके नेत्रों में आँसू थे। उसने नहा धोकर नई साड़ी पहन लिया। बीना इत्यादि दो तीन और भी सखियाँ उसके साथ थीं।

"यह साड़ी कहाँ से पाई" सखियों ने पूछा "शहर में एक बाबू ने दिया"—उत्तर था। लाड़ली भोली थी। उसके अन्दर छल कपट न था, स्पष्ट बतला दिया।

"जब बाबुओं से ही जान पहचान हुई तो फिर साड़ियों तथा अन्य वस्तुओं की कमी ही क्या रह सकती है?" कटाक्ष किया सखियों ने।

निर्दोष व्यक्ति के ऊपर जब कटाक्ष होता है तो असह्य हो जाता है। उसके नेत्रों से आँसु बहने लगते हैं। आँसू बहते हैं इसलिये कि सब कुछ करने की शक्ति होते हुए भी वह कुछ कर नहीं सकता। यही दशा लाड़ली की भी हुई। वह अपना घड़ा ले घर की ओर चल पड़ी।

घर आने पर गिरिवर ने देखा उसकी बहन रो रही है। पूछा उसने "क्यों लाड़ली रोती क्यों हो?"

लाड़ली ने सब समाचार कह सुनाया। गिरिवर ने कहा, "देखो दूसरों की बढ़ती जब पड़ोसी देखते हैं तो उन्हें अप्रसन्नता होती है, यह मान्य है। लाड़ली! तुम समझदार होते हुए भी मूर्ख हो। तुमने उनसे क्यों नहीं कह दिया कि तुम लोग भी जाओ शहर में और कमा लाओ। गिरिवर अपने जीवन में सबसे अधिक लाड़ली को ही मानता था। वह उसकी जीवन-कली के रूप में थी।

शान्त्वना पा लाड़ली चुप रही। यद्यपि लाड़ली ने दो साड़ी पाई थी पर उसने अपनी माँ को एक ही दिखलाया और बतलाया। काँख तले एक साड़ी दबा वह चल पड़ी लीला के घर की ओर। पहुँचते उसने कहा "भौजी! तेरे लिये साड़ी लाई हूँ!"

"भौजी कहकर मुझे क्यों जलाती हो?" जलाती नहीं सखी। एक दिन ऐसा अवसर अवश्य आवेगा!

"कोई उम्मीद नहीं।"

यद्यपि भोजन इत्यादि बनाना था अतः लाड़ली तुरन्त साड़ी दे लौट पड़ी। लाड़ली का भाई गिरिवर सबेरे ही उठ शहर में जाया करता था। उनका काम था 'सग्गड़' खींचना। 'सग्गड़' पर सामान रख वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाया करता था इस प्रकार उसे कुछ पैसे मिल जाते। उन्हीं को संतोष की दुनियाँ में सोचता विचारता वह घर आता। उसी के लिये भोजन बनाने को देर होगी ऐसा सोचकर वह शीघ्रता से लौट पड़ी थी लीला के यहाँ से।

गरीबों की दुनियाँ में भोजन भी क्या ही आनन्ददायक है। वहाँ भाँति-भाँति की तरकारियाँ, तन्दुरुस्ती पर बुरा प्रभाव डालने वाली चटनियाँ कहाँ? वहाँ तो वही वस्तु प्राप्त होती है जिसे खा देहाती हट्टे-कट्टे तथा पूर्ण-स्वस्थ दिखलाई देते हैं। कभी लिट्टी मिल जाती है तो नमक का ही अभाव रहता है एवं यदि कभी दोनों मिलते हैं तो मानों

भाग्य जगे। पर उस भोजन में महान् संतोष छिपा रहता है। हाँ इतना अवश्य है कि भर पेट मिल जाना चाहिये।

भोजन कर गिरिवर चल पड़ा। नगर उसके गाँव से प्रायः तीन मील की दूरी पर था। वह दश बजे नगर में पहुँच गया। शहर में जा 'सग्गड़-मालिक' के यहाँ पहुँचा वहाँ उसके अन्य साथी भी आये थे। सभी मिल सग्गड़ शहर की ओर ले चले। वे चले जा रहे थे। उधर से एक मिलिट्री-मोटर चली आ रही थी। सड़क कुछ तंग पड़ी। मोटर ड्राइव में शान नहीं रही। धक्का लग ही गया। गिरिवर सग्गड़ के दाहिने होने के कारण गिर गया, वह कुछ घायल हुआ। उसके साथियों ने उसे सलाह दी "अब तुम जाकर आराम करो" हम जा रहे हैं।"

बालकृष्ण के बँगले के नीचे ही बैठकर गिरिवर स्वयं अपने घावों के लिये डाक्टर बन बैठा। वह अपनी अंगौछी फाड़कर पट्टी इत्यादि बाँधने लगा।

खट-खट खट का शब्द सहसा रुक गया। वह बालकृष्ण था। रुक कर उसने गिरिवर का दृश्य देखा। सम्पूर्ण शरीर से यद्यपि खून का बहना प्रतीत हो रहा था परन्तु गिरिवर उन्हें रोकने में व्यस्त था।

"ऐं! कहाँ के रहने वाले हो?" पूछा उसने। "बाबूजी! चोट लग जाने से कुछ आराम के लिये यहाँ रुक गया, जा रहा हूँ" कहकर गिरिवर उठने लगा। "भाई! तुम्हें जाने के लिये तो मैं कह नहीं रहा हूँ। यह पूछ रहा हूँ कि कहाँ के रहने वाले हो?"

"घर तो मेरा सुखपुरा है बाबू!"

तदन्तर चोट लगने इत्यादि का पूर्ण समाचार उसने बालकृष्ण से कह दिया।

"देखो! "चलो तुम्हें अस्पताल में भरती करा दें"—कहा बालकृष्ण ने।

"अस्पताल! अस्पताल तो मेरे अखाड़े की मिट्टी ही है बाबूजी।

फिर भी यदि अस्पताल का मैं सेवन करने लगूँ तो पूजा कैसे होगी"—कहते हुए गिरिवर ने अपने पेट पर हाथ फेरा।

"तो क्या तुम फिर काम पर जाओगे?"

"जी, जरूर।"

"अच्छा कहीं नौकरी क्यों नहीं करते"—बालकृष्ण ने पूछा।

"यदि मिल जाय तब तो बड़ा ही अच्छा हो।" अच्छा जाओ। घाव अच्छे हो जाने पर तुम मेरे पास आना, मैं तुम्हें नौकरी दे दूँगा"—कहते हुए बालकृष्ण ने उसे बीस रुपया दिया।

"इन रुपयों को मैं क्यों लूँ बाबू!" जब मैं आपकी सेवायें करने लगूँगा तब तो मिलेगा ही।"

"नहीं, नहीं ले जाओ।"

गिरिवर रुपया ले अपने घर की ओर चला। सोचता था सचमुच अभी भी गरीबों से सहानुभूति रखनेवाले बहुत है। उसे लाड़ली की साड़ी वाली बातें याद आ गईं। वह चला आ रहा था। उसके हृदय में अब भाँति-भाँति की कामनायें उठने लगी थीं। वह अब बालकृष्ण बाबू का नौकर रहेगा। उनके साथ उसे भी मोटर में सवार होने का सौभाग्य होगा वह सोचता हुआ चला जा रहा था।

[ १७ ]

लतिका का हृदय हर्ष तथा विषाद से पूर्ण था। परन्तु फिर भी उसे संतोष था कि उसकी लड़की यदि अब तक जीवित होगी तो खूब मजे में होगी।

सत्तरह वर्ष व्यतीत हो चले थे। लड़की की कहानी लतिका के लिये स्वप्नवत् जान पड़ती थी। इस समय के दौरान में लतिका के सामने जो-जो विपत्तियाँ आई उन्हें सुन कलेजा दहल जाता है परन्तु फिर भी लतिका ने अपने सतीत्व को पूर्ण रूप से बचाया।

दुष्टों के हाथों में पड़ी पर निकल चली। दर-दर गलियों की ठोकरें खानी पड़ीं पर सभी कुछ उसने सह लिया। अपनी अस्मत को बचाती हुई लतिका का एक न एक दिन व्यतीत होता ही जा रहा था।

दो-तीन दिनों तक इधर-उधर की कुछ ठोकरें खा लतिका ने एक अनाथालय में प्रवेश किया। नाम था उसका अनाथालय बाँकुड़ा। उसी अनाथालय में बैठी-बैठी लतिका अखबार पढ़ रही थी। उसी में निकला हुआ था—

आवश्यकता है।

"म्युनिसिपल प्राइमरी स्कूल पीर गंज में चार सहायक अध्यापिकाओं की, योग्यता मिडिल पास।"

लतिका बहुत ही प्रसन्न हुई। उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि उसका चुनाव अवश्यमेव हो जायेगा। वह अनाथा तो थी ही, उसकी सनद भी प्रथम श्रेणी की थी। उसने प्रार्थना-पत्र भेज दिया। उसका मनोरथ पूर्ण हुआ। ठीक ही है—"विद्या विदेशगमने बन्धुजनो।" परन्तु आज कल के प्रतिष्ठितों के सामने यह समस्या है कि उनकी बहन-बेटियाँ

पढ़ने क्यों जाँय। "लड़कियों को पढ़ाना क्या है उनके जीवन को चौपट करना है"—उनका विचार है। यद्यपि आधुनिक युग में शहर के लोगों में से तो यह बात हट गई परन्तु उनकी संख्या शहर में है ही कितनी? भारत की अधिकांश जनता का निवास तो देहातों में है। क्या कहा जाय सामाजिक रूढ़ियों को। यदि लतिका पढ़ी न होती तो क्या भीख माँगने के अतिरिक्त उसे और कोई उपाय था?" नहीं।" हाँ, यदि उसे प्रतिष्ठा बेचना स्वीकार होता तो हो सकता था कि उसके जीवन दिवस बीत जाते। परन्तु बेइज्जती का जीवन कोई जीवन नहीं। क्या वेश्याओं का जीवन भी कोई जीवन है?

लतिका का जीवन एक आदर्श जीवन रहा। यौवन में विवाह होने का विश्वास कर उसने नरेन्द्र से सम्बन्ध किया था। यदि पतित-अधम समाज यह कहे कि उसे पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं तो आप कहिये कि नहीं-नहीं उसे आज्ञा अवश्य होनी चहिये। उन्हें पुनर्विवाह की परमावश्यकता है।

मदन का प्रकोप उनपर पुरुषों की अपेक्षा अधिक होता ही है, वास्तव में वे अबला हुई हैं तो पुनः वैधव्य प्राप्त करने पर उन्हें एक पुरुष की छत्र-छाया में रहना ही श्रेयस्कर है। उनका पुनर्विवाह होना ही चाहिये।

हाँ तो लतिका ने नरेन्द्र से सम्बन्ध किया पति के जीते जी सतीत्व नष्ट न हो इसका भी उसने पूर्ण प्रयत्न किया। उसे क्या पता था कि "मर्द बेवफा होते हैं।" उसे कठिनाइयाँ सहनी पड़ी परन्तु शिक्षा के बल पर, केवल शिक्षा के बल पर उसे आश्रय भी मिला। वह अध्यापिका का कार्य बड़े उत्साह से करने लगी।

[१८]

लतिका का पाठशाला में काम लग गया। वह एकाग्रचित्त हो अपना काम करने लगी। शहर में उसने एक मकान का कुछ हिस्सा भी ले लिया, उसी में रहने लगी। जन्म के साथी माता-पिता ने उसे असहाय बना घर से निकाल दिया परन्तु कर्म के साथी भगवन् ने उसे अपनी शरण लिया। उसके जीवन-दिवस सुख से बीतते जा रहे हैं यद्यपि उसके जीवन में सुख था भी नहीं क्योंकि वह दुखिया थी, विधवा थी। विधवाओं से बढ़कर दुःखी तथा निराश्रय और कोई भी नहीं।

बहुत दिन पहले एक दिन की बात है लतिका अखबार ले पढ़ रही थी। सहसा उसकी दृष्टि एक विज्ञापन पर पड़ी।

"देशोद्धार की योजना सामने रखते हुए आज सरस्वती-भवन में श्रीनरेन्द्रबाबू के सभापतित्व में एक सभा हुई जिसमें नगर के बहुत से लोग सम्मिलित थे। सभा यह प्रकाशित कर रही है कि विधवा-विवाह से हम सहमत हैं यदि कोई विधवा हो तो वह तुरत सभापति देशोद्धारक समिति को आवेदन-पत्र भेजे।"

"नरेन्द्र बाबू के सभापतित्व में सभा हुई" लतिका ने पुनः दुबारा पढ़ा। वह सोचने लगी—

"एक वह नरेन्द्र था जिसने मुझे बहकावे में डाल मेरे जीवन को चौपट कर डाला। नरेन्द्र! तुम्हें नर्क में भी ठोकरें खानी पड़ेंगी। यदि मैं पढ़ी होती "लैला के खतूत" तो तुम्हारे बहकावे में क्यों आती? इस पुस्तक में भली भाँति बतलाया गया है कि मर्द कितने बेवफ़ा होते हैं। पर एक नरेन्द्र ये हैं। इन्हें धन्यवाद है, धन्यवाद सौ-सौ बार है— ऐसा प्रतीत होता है इन्हें भी समाज ने धोखा दिया है। किसी मनोभिलाषित वस्तु को ये समाज के चलते ही न पा सके होंगे। आह!

वाह !! क्या ही बढ़ियाँ विज्ञापन है—"विधवा विवाह से हम सहमत हैं यदि कोई विधवा चाहे तो वह तुरत सभापति को आवेदन-पत्र भेजे...."

"अच्छा। ज़रा चलकर देखूँ विज्ञापन में कहाँ तक सत्यता है। सुना जाता है विज्ञापन प्रायः झूठे हुआ करते हैं। इसी से तो आजकल विज्ञापनों पर से सबका विश्वास उठ गया है—"लतिका ने स्वगत ही कहा।

दूसरे दिन बड़े ही सबेरे लतिका ने उठकर नित्य क्रिया से मुक्त हो स्नान इत्यादि किया। तत्पश्चात् वह कोठे से उतर सड़क पर आ गई। उसे सरस्वती-भवन जाना था। अपने डेरे के नीचे किये हुए दूकानवाले दूकानदार से उसने पूछा, "कल्लू!"

"जी मास्टर साहब!" उत्तर था।

"सरस्वती-भवन कितनी दूर है।"

वहुत निकट ही है आशा करता हूँ चार फर्लांग मात्र पड़ेंगे। क्यों आपको वहाँ जाना है क्या?" पूछा कल्लू ने।

"हाँ भाई वहीं जाना है।"

लतिका कल्लू द्वारा बताये हुए रास्ते के अनुसार चल पड़ी। अभी वह शहर से पूर्ण परिचित भी नहीं हो पाई थी क्योंकि शहर में रहते उसे कम ही दिन बीते थे।

थोड़ी ही देर पश्चात् लतिका वहाँ पहुँच गई। उसने अपने नेत्र ऊपर उठा कर देखा। साइनबोर्ड खूब बड़े-बड़े अक्षरों में लगा हुआ था—

"कार्यालय, देशोद्धारक समिति, नाटकनगर बाँकुड़ा।" लतिका ने बाहर से ही देखा—एक दुबला पतला युवक कार्यालय में बैठ टाइप कर रहा था।

"क्या मैं आ सकती हूँ महोदय?" लतिका ने पूछा। "हाँ-हाँ अवश्य आइये"—उत्तर था।

युवक महोदय सभा के सेक्रेटरी श्रीमान् फड़फड़दास ही थे। उन्होंने लतिका से पूछा, "कहिये आपने कैसे कष्ट किया ?"

लतिका रो पड़ी। वह बहुत प्रेरित किये जाने पर बोली "मैं एक अनाथ विधवा हूँ अपनी जीवन नैया को पार लगाने के लिये आपलोगों के शरण में आई हूँ।"

"बस-बस समझ गया। रोने की आवश्यकता नहीं। आप सब्र करें सभी कुछ हो जायेगा। आप हमारे घर चलें तब तक रहें पुनः सभा अवसर पर सरस्वती भवन में उपस्थित होना होगा। देखिये यहाँ तो केवल कार्यालय है—उतनी जगह नहीं कि सभी कार्य यहीं किये जा सकें अतः केवल कार्यालय का कार्य होता है" कहा फड़फड़दासजी ने।

लतिका को उनके घर जाने में कुछ हिचकिचाहट जान पड़ी। अतः उसने कहा—"यदि मैं अभी से सभाभवन में ही रहूँ तो क्या हर्ज ?"

"कोई हर्ज नहीं बहन! तुम जहाँ चाहो वहाँ रह सकती हो। हमारा घर तुम्हारा ही घर है। तुम हमारी धर्म की बहन हो। कुछ मेरा विश्वास भी करो, चलो तुम घर पर ही। सभाभवन में सभा अभी देर से होगी। सभी को सूचित करना होगा। सारांश यह कि अभी बहुत से कार्य शेष हैं तब न कहीं जाकर सभा होगी।"

बहन, शब्द में मिठास थी, शुद्धता थी तथा भोलापन था। उसमें कपट नहीं दीख पड़ा। लतिका चल पड़ी फड़फड़दासजी के साथ उनके घर की ओर। थोड़ी देर में उनका घर भी आ गया।

ऊपर पहुँच डाक्टर महोदय से भेंट हुई। झट उन्होंने लतिका को नमस्ते किया तथा बैठने के लिये कुर्सी ला रख दिया। इसी बीच डाक्टर साहब चल दिये। "सब प्रबन्ध करियेगा मैं एक घंटे बाद लौटूँगा—" जाते समय डाक्टर साहब नें अपनी श्रीमतीजी से कहा।

कुर्सी पर बैठती हुई लतिका ने डाक्टर महोदय को आशीर्वाद दिया—

"करुणा के कानन में सावन का मेघराज बनो ।
यौवन के फाल्गुन में प्रेम का पिक बनो ॥
चिन्ता के चैत्र में धीरता के कुसुम बनो ।
भाव के भादों में आनन्द की सरिता बनो ॥
नैतिकता के आश्विन में मानवता का चन्द्र बनो ।
सार बनो बसंत विशुद्ध सदाचार का ।"

यद्यपि डाक्टर महोदया भी मैट्रिकुलेशन ( Matriculation ) पास कर चुकी थीं पर उन्हें उपर्युक्त विद्वत्ता भरे शब्दों तथा रूपकों की झड़ियों ने आश्चर्यान्वित कर दिया। वे तुरत बोल उठीं, "बहन, आपने यह आशीर्वाद देना कहाँ से सीखा ?"

"अपनी जीवन परिस्थितियों से बहन !" यह आशीर्वाद आज से पहले मैंने जीवन में एक ही बार एक लड़की को—अरे लड़की क्या युवती को दिया था। उस समय मानसिक व्यथायें चर्मसीमा पर पहुँच चुकी थीं बहन ! साथ ही शारीरिक व्यथा भी थी अतः आशीर्वाद देने का कार्य जिह्वा ने नहीं बल्कि हृदय ने किया। बहन ! अपनी लज्जा को बचाने के लिये मैंने उससे उसका परिचय भी नहीं पूछा यद्यपि वह थोड़ा बहुत मेरे बारे में जान गई थी। मुझे इस बात का डर था यदि मैं इससे इसका परिचय पूछता हूँ तो बाद में मुझे भी अपना परिचय देना होगा। परन्तु उस समय मैं अपना परिचय दे माता-पिता को पशु सिद्ध करते हुए उनके मत्थे कलंक का टीका नहीं लगाना चाहती थी। वह थी बड़ी भोली चलते समय मैंने उसकी ओर कृतज्ञता भरी दृष्टि से देख भर लिया।"

लतिका के नेत्रों में आँसू थे। गला रौंध गया, वह आगे कुछ बोलना चाहती थी परन्तु बोल न सकी। उसका हृदय विषाद पूर्ण हो गया। डाक्टर महोदया झट पानी लायीं और कुछ मिष्टान्न देते हुए उन्होंने उससे पानी पी लेने का अनुरोध किया। लतिका ने पूर्ण आना-

कानी की परन्तु महोदया ने उसे हठात् अपने ही हाथों उसके होंठों पर गिलास लगाना प्रारम्भ किया। यह देख लतिका ने पानी पीना स्वीकार करते हुए होंठों से गिलास दूर करने की प्रार्थना की।

पानी पी लेने के पश्चात् पुनः लतिका कहने लगी:—

"बहन! वह मेरा कार्य पूरा कर वहाँ से चल पड़ी। चलते समय उसके नेत्रों में दया थी, राग था। मैंने परमपिता से प्रर्याप्त प्रार्थना की कि उससे एक बार और मिल लूँ परन्तु अभागों के मनोरथ कहाँ तक पूर्ण होते हैं यह तुम स्वयं सोच सकती हो। वह चल पड़ी। बहन! बुरा न मानना, उसकी आकृति तुम्हारी ही जैसी थी।"

"नहीं बहन! मैं बुरा क्यों मानूँ। आदमी सरीखे आदमी क्या नहीं होते"—कहा डाक्टर महोदया ने।

लतिका ने पुनः कहा, "हाँ, बहन! वह चल पड़ी। मैं उसके विषय में कुछ भी न जान सकी। हाँ बातचीत के दौरान में मैंने उसका नाम सुन लिया था। उसका नाम 'रमियाँ' था।

रमियाँ शब्द सुनते ही सहसा डाक्टर महोदया चौंक पड़ीं। उन्हें भी स्मरण हो आईं बीती हुई घटनायें। झट आश्चर्य भरे शब्दों में बोल उठीं, "क्या तुम्हीं मुझसे पोखरे पर प्रसवकालीन वेदना के समय मिली थी बहन!"

एक दूसरे के इच्छुक दोनों हृदय आपस में मिले। दोनों के आँसू नेत्रों से निकल पृथ्वी को आर्द्र कर दिये। "क्या तुम्हीं हो रमियाँ, बहन!" रोते ही रोते प्रश्न था।

× × ×

थोड़े ही समयोपरांत रमियाँ ने लतिका से कहा, "बहन! अब तुम विश्राम करो, हम जरा भोजन बनायें।"

"चलो हम भी बनवा दें, झट लतिका के मुँह से निकल पड़ा। परन्तु तुरत ही सोचने लगी "हो सकता है ये लोग मेरा छूआ हुआ न खाँय।"

"तुम अतिथि हो बहन ! तुम क्या भोजन बनाओगी ।" "बहन यदि मेरा बनाया हुआ खाने में कोई हर्ज नहीं है तो मैं सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि आराम करने की अपेक्षा मुझे भोजन बनाने में अधिक आनन्द मिलेगा ।"

"बहन ! कोई हर्ज नहीं है भोजन बनाने में। हम सभी तो आर्य-समाजी हैं छूआछूत हमारे यहाँ कहाँ ?"

"आर्यसमाज ! तुम धन्यवाद के पात्र हो ।, तुम्हारे ही चलते आज हिन्दुओं की कुछ सत्ता अवशेष है नहीं तो इन पाखण्डियों, सनातनियों के चलते कितने ही बिना चोटी वाले हो सुनत करा लिये होते । इनका धर्म तथा समाज भी कितना कमजोर तथा पतित है। यदि कोई ब्राह्मण किसी मुसलमान के घर भोजन कर लेता है तो ब्राह्मण मुसलमान हो जाता है। वाह ! इस धर्म में इतनी शक्ति नहीं कि वह मुसलमान ही क्यों नहीं ब्राह्मण हो जाय ?"

"सनातनियों का मत है—"वैधव्य में जो विमलता है वह कहाँ ! निरंतर तप से विभूषित विधवायें ही तो अवनि का आधार हैं"—। पता नहीं वे किस दृष्टि से देखते हैं ।· उन्हें कम से कम संसार की दशा ही देख लेनी चाहिये तभी उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि विधवायें अवनि का आधार हैं अथवा भार—सोच रही थी लतिका ।

"चलो बहन ! जब नहीं मानोगी तो साथ-साथ भोजन बनाया जाय"—कहा रमियाँ ने ।

दोनों चल पड़ीं ।

× × ×

डाक्टर फड़फड़दास सर्वप्रथम श्रीनरेन्द्र बाबू के यहाँ पहुँचे और उन्होंने बतलाया कि एक युवती जो विधवा है, विवाहार्थ आई है ।

नरेन्द्र बाबू ने कहा, "भाई ! खड़े होकर कह देना और बात है परन्तु उसे कार्य रूप में परिणत करना कुछ और ही है। मैंने अपने

जीवन में इतना ही त्याग कम नहीं किया है—कि मैं विवाह ही न करूँगा यदि अबला समूह पर अन्याय है।

वहाँ से निराश हो डाक्टर साहब ने औरों के यहाँ भी दौड़-धूप मचाई परन्तु कोई तैयार नहीं हुआ। यही थे देशोद्धारक।

"ऐसे ही लोग और नष्ट कर देते हैं समाज को। यदि सुधार करना है तो सुधार-सुधार की तरह होना चाहिये न कि आडम्बर युक्त-सुधार" डाक्टर साहब ने स्वगत ही कहा।

वे पुनः लौट पड़े और नरेन्द्र बाबू के यहाँ आये। आते ही आते उन्होंने पूछा, "यदि आपलोगों को विधवा-विवाह स्वीकार नहीं था तो समिति के दैनिक-पत्र में इसी आशय का विज्ञापन एक ही शब्दों में आज इतने दिनों से निकाला क्यों जा रहा है? मैं कौनसा उत्तर दूँ?"

"आप घबरायें नहीं" नरेन्द्रजी ने कहा, "सभा बुलाइये मैं सभी कार्य ठीक कर दूँगा।"

सभासदों को सूचित किया गया। सभी आ आकर यथास्थान बैठने लगे। लतिका भी बुलाई गई। वह आकर प्राइवेट कमरे में बैठ रही। सभापति नरेन्द्रजी के आने पर सभी उठ खड़े हुए। डाक्टर साहब ने गत सभा की रिपोर्ट पढ़ी और आज की सभा का कार्य तत्पश्चात् प्रारम्भ हुआ।

सभापति की आज्ञा हुई कि युवती सभाभवन में लाई जाय। लोगों ने आने को कहा पर वह आ न सकी। इसी बीच श्रीफड़फड़दास उस कमरे में गये। उनके जाने का आशय यही था कि वे लतिका को साथ ले आवें।

कमरे में जाकर देखते क्या हैं कि युवती नहीं है। उनके आकर यह संदेश देने पर सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। सभा विसर्जित हुई। सभी यत्र तत्र चले गये।

❁

[१६]

लतिका ने सभापति को पहचान लिया था। विज्ञापन पढ़ते समय जिस नरेन्द्र को उसने बार-बार धिक्कारा था वही यहाँ सभापति था। वह बीच सभा में जा नरेन्द्र को बेइज्जत करना नहीं चाहती थी अतः खिड़की के रास्ते वह दूसरे बंगले में चली गई। वह बंगला नरेन्द्र बाबू का खास था। यद्यपि दोनों उन्हीं के थे परन्तु यह समिति को दे दिया गया था।

कागज-पत्र यत्र तत्र रखकर श्री सभापति महोदय भी अपने बंगले में आये। ऊपर जा देखते क्या हैं कि उनकी कुर्सी पर एक युवती बैठी बैठी रो रही है। वे धीरे-धीरे उसके सामने जाते हैं पर उसे क्या पता कि कौन आया कब आया।

नरेन्द्र का कलेजा दहल उठा। उसने अपने को लतिका के सन्मुख पापी पाया। सोचने लगा "मेरे ही चलते लतिका की बहुत सी दुर्दशायें हुई। वह घर से निकाल दी गई, इतना तो मुझे मालूम है। परन्तु पुनः उसे कौन-कौन सी आपदायें सहनी पड़ीं मैं नहीं जानता। हाय! मैं बहुत ही बड़ा पापी हूँ। आशा है मुझे परमेश्वर नरक में भी शरण नहीं देगा। मैं मर्द नहीं बल्कि कायर हूँ। लतिका औरत नहीं बल्कि मर्द है। निष्कासन के समय बीसों पचीसों ने पूछा था" तुम्हारा सम्बन्ध किससे है "परन्तु बेचारी ने नहीं बतलाया। क्यों? मेरी प्रतिष्ठा के लिये आज यहाँ भी सभाभवन में उपस्थित नहीं हुई, क्यों? मेरी ही प्रतिष्ठा के लिये। पर हाय इस अभागे ने तेरे लिये कुछ नहीं किया लतिका।"

सहमते-सहमते नरेन्द्र आगे बढ़ा, वह लतिका के बिल्कुल

निकट पहुँचा परन्तु फिर भी लतिका जान न सकी। वह विभोर थी सोचने में।

"लतिका कुछ इधर भी देखो"—नरेन्द्र ने नम्रता से कहा।

लतिका का ध्यान टूट गया। मानसिक सागर में गोते लगाता हुआ उसका हृदय ऊपर आया। देखती क्या है नरेन्द्र उसके सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा है। कौन सी भावनायें उसके हृदय में उपस्थित हुई यह लेखन-शक्ति से परे है। परन्तु दोनों की बातों का ज्ञान तो कराया ही जा सकता है। लतिका ने कहा, "कहिये क्या समाचार है ?"

नरेन्द्र चुप रहा। लज्जित, बोल ही क्या सकता है।

समाचार सब ठीक तो है न ?

"अधिक लज्जित न करो—" संक्षिप्त उत्तर था लतिका ने कहा, "नरेन्द्र! तुम्हारे द्वारा किये गये कर्मों के कारण मैंने भाँति-भाँति की व्यथायें सही हैं। मेरे सतीत्व को भ्रष्ट करने के लिये भी दुष्टों ने उठा न रखी परन्तु "बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय" कब ? जब परमेश्वर रक्षार्थ तैयार हैं। उसी परवरदिगार तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि लगातार दो दिन के उपवास से जब मेरी दशा सोचनीय हो गई तो उस समय मैंने उचित तथा अनुचित का विचार नहीं किया। नगर में ही एक सेठ के यहाँ बारात आई थी। बहुत से लोग भोजन कर रहे थे। मैंने भी उन्हीं में जा हाथ पसारा। मुझे पर्याप्त पूड़ियाँ मिल गई। कुछ तो मैंने खा लिया। कुछ ले, चल पड़ी पूर्व दिशा में। सबसे बड़ी दिक़त मेरे लिये सोने की थी। मुझे गुंडों का सर्वदा डर बना रहता था। अतः मुझे एकान्त की आवश्यकता पड़ती थी। इसी ध्येय को सामने ले मैं नगर पूर्व स्थिति पोखरे पर पहुँची।

नरेन्द्र! वहाँ तुम्हारी पुत्री हुई, पर हाय वह कहाँ है कुछ भी ज्ञान नहीं। तदन्तर मैंने शहर में रहना ही उचित समझा। कुछ समय

पश्चात् परमेश्वर की असीम अनुकम्पा से मुझे प्राइमरी स्कूल में अध्यापिका का पद मिला। मैं सुख से रहने लगी। वर्षोंपरांत तुमसे मिल सकी हूँ। मुझसे जो अपराध हों उन्हें क्षमा करना। "इतना कह लतिका नरेन्द्र से लिपट पड़ी।

नरेन्द्र बच्चों की भाँति रो पड़ा। उसने कहा "तुमने अपनी सारी व्यथा मुझसे सुनाई लतिका। मेरा हृदय स्थल उससे जल रहा है। मैं भी अपनी व्यथायें सुना तुम्हें और रुलाना नहीं चाहता। फिर भी इतना बतला देना चाहता हूँ कि मैंने तुम्हारी सर्वदा खोज की। पर पता नहीं तुम कहाँ थी। इसी ध्येय को लेकर पत्रिका निकाली गई। बहुत सी विधवायें विवाहार्थ आई परन्तु मैंने इनकार कर दिया। मुझे तो उनकी आवश्यकता थी नहीं।

"प्रिये! चातक मन्दाकिनी जल से परितृप्त नहीं होता उसे तो स्वाती के घनश्याम का ही एक बूँद अभिलषित है।"

"विधवायें आती रहीं, मैं इनकार करता रहा। यह देख डाक्टर साहब बिगड़ते रहे। पर प्रकाशन तो मेरा किसी दूसरी ही वस्तु के लिये था जिसे मैं आज अपनी आँखों से देख रहा हूँ।"

"मुझे कुछ और कहना नहीं है। मैं बड़ा भारी पापी हूँ, कायर हूँ। तुम्हारे निष्कासन के समय मैंने कायरता दिखलाई परन्तु अब मैं तेरी शरण में हूँ"—कहते हुए नरेन्द्र लतिका से लिपट पड़ा। पुनः उसने कहा—"मुझे क्षमा कर दो लतिका।" उत्तर मिला। "मेरे भी अपराधों को भूल जाओ नरेन्द्र"—

दो बिछुड़े हुए हृदय मिले। अपार प्रसन्नता हुई उन दोनों को। माना कि मर्द बेवफ़ा होते हैं और औरतें भी उनसे कम नहीं परन्तु यहाँ बेवफ़ा कोई नहीं था। दोनों सच्चे प्रेमी थे। हाँ एक कायर कुछ अवश्य था। उन दोनों ने व्यथायें सहीं। यह किसका प्रताप तथा किसका अभिशाप था? समाज का।

"अच्छा आज्ञा दीजिये अब चलूँ—" लतिका ने कहा।

"कहाँ ?" आश्चर्य से पूछा नरेन्द्र ने।

"अपने डेरे पर, और कहाँ ?"

"यह भी तो आपही का घर है ?"

"जी नहीं, यह मेरा नहीं बल्कि श्रीनरेन्द्र बाबू का।"

"नहीं, नहीं, लतिका ! उतना ही लज्जित करो जितना मैं सह सकूँ। नहीं तो हो सकता है कि आत्महत्या भी करनी पड़ी।"

लतिका ने कहा, "ठीक है। अब मैं जा रही हूँ। रहूँगी वहीं, तब तक जब तक कि सारा नगर न जान जाय कि लतिका तथा नरेन्द्र एक दूसरे के हो गये।

"सारा नगर शीघ्रताशीघ्र जानेगा—"नरेन्द्र ने कहा।

"तब तो अहोभाग्य"—लतिका ने स्पष्ट किया। "अच्छा चल रही हूँ, मिलते रहेंगे हम दोनों। आइयेगा सी० के ग्यारह अपान एक सौ चौबीस में। C. K. ११।१२४—

चल पड़ी वह। उसने चाहा कि उसे पकड़ ले परन्तु रुक गया पुनः।

लतिका के चले जाने के बाद नरेन्द्र विह्वल हो उठा! सम्पूर्ण घटना उसे स्वप्नवत् जान पड़ी। उसे पता ही न था कि घटनायें वास्तविक थीं अथवा काल्पनिक।

पुनः उसे होश आया। नहीं-नहीं बातें सही हैं। मकान नम्बर है C. K. ११।१२४

❁

# [२०]

प्रातः हुआ। प्रति दिन पूर्व दिशा में ही उगने वाले सूर्य ने संसार को प्रकाश-दान किया। बिस्तरे से उठ नूरजहाँ ने नित्यक्रिया समाप्त कर स्नान किया। स्नानोपरांत स्नो तथा पाउडर की वही निराली चाल जो पहले थी। निर्जीव कंघी भी बालों पर सरासर चलने लगी। कपड़े इत्यादि पहन नूरजहाँ तैयार हो गई बालकृष्ण के यहाँ जाने के लिये।

नूरजहाँ को बालकृष्ण ने बेइज्ज़त किया था। वह बदला लेने की इच्छुक थी। उसे मिलना आवश्यक था अतः वह तैयार हो रही थी जाने के लिये।

इधर बालकृष्ण को आकर बरना ने जगाया। बिस्तरे का त्याग कर बालकृष्ण शौच इत्यादि के लिये चला—तत्पश्चात् उसने स्नान किया। तदंतर बरना ने ट्रे लाकर टेबुल पर रख दिया।

"आमलेट भी लाओ"—आदेश था।

जलपान इत्यादि कर कुर्सी पर बैठ ज्योंही बालकृष्ण ने एक पुस्तिकावलोकन करना प्रारम्भ किया कि बरना ने कहा, "सरकार! नूरजहाँ आई हैं।"

"नूरजहाँ?"

"जी हाँ।"

"बुला लाओ।"

थोड़ी देर में नूरजहाँ नौकर के साथ कमरे में आ गई। नौकर ने सुअवसर प्रदान करने के लिये वहाँ से हट जाना ही उचित समझा। नूरजहाँ को बालकृष्ण ने पकड़ उसके कपोलों का एक मधुर चुम्बन लिया। दोनों कोच पर बैठ गये।

"नूरजहाँ! आलमारी से निकालो"—बालकृष्ण ने कहा। नूरजहाँ ने

झट ताला खोल एक बोतल निकाला उसे जाम में भरते हुए बालकृष्ण के अधरों से लगा दिया। बालकृष्ण शराब पी मस्त होगया। उसने अब अपने हाथों जाम भर नूरजहाँ से पीने को कहा। नूरजहाँ कब अवसर चूकने वाली थी!

थोड़ी देर बाद—

"कुँवर मुझे क्षमा कर दो"—नूरजहाँ ने कहा। "आखिर तुम्हारा कोई अपराध भी है या यों ही क्षमा कर दूँ"—पूछा बालकृष्ण ने।

"मैंने गुस्ताखी की है बहुत बड़ी, उसी के लिये क्षमा चाहती हूँ।"

"मैं तुमसे बहुत प्रसन्न रहता हूँ नूर। क्या शयनानन्ददायिनियों को भी यह कहने की आवश्यकता है कि "मुझे क्षमा कर दो। उन्हें तो लोग स्वयं ही क्षमा कर देते हैं बालकृष्ण ने कहा।"

तत्पश्चात् बालकृष्ण ने नूरजहाँ को और भी आगे खींच लिया। नूरजहाँ भी उससे लिपट गई। शराब की बोतलें खाली होती जा रही थीं। आनन्द उमड़ रहा था दोनोंके हृदयों से। इसी बीच बरना दौड़ते हुए आया और कहने लगा "सरकार! बड़े सरकार आ रहे हैं।"

"आ रहे हैं?" बालकृष्ण ने आश्चर्य से पूछा। "जी हाँ"—पुनः उत्तर था।

"अच्छा नूरजहाँ! तुम खिड़की के रास्ते निकल जाओ नहीं तो बड़ा गड़बड़ होगा। जा, बरना! खिड़की के रास्ते इन्हें सड़क पर कर दे" बालकृष्ण ने कहा।

जाते समय बालकृष्ण ने कहा, "नूरजहाँ! तुम्हारे यहाँ आने की आवश्यकता नहीं, मैं स्वयं ही तुम्हारे पास आ जाया करूँगा।"

"बहुत अच्छा कुँवर! कहती हुई नूरजहाँ चली गई। बालकृष्ण ने भी इधर-उधर पड़े हुए बोतलों तथा कटोरों को तुरत आलमारी में रख ताला लगा दिया और स्वयं कुर्सी पर बैठ पुस्तिकावलोकन करने लगा। नौकर ने ट्रे लाकर टेबुल पर रख दिया।

बालकृष्ण ने अपने पिता को दिखलाने के लिये खूब ध्यानपूर्वक पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ किया, वे बिलकुल निकट चले आये पर उसने ध्यान नहीं दिया। श्रीकृष्ण बाबू की प्रसन्नता का ठिकाना न था जब उन्होंने देखा कि उनका लड़का घोर अध्ययन में लगा हुआ है। वे धीरे से बोल उठे, "बालकृष्ण क्या पढ़ रहे हो।"

"घबराकर उठते हुए बालकृष्ण ने तुरत अपने पिता का पादस्पर्श किया और कहा" कि अर्थशास्त्र है पिताजी।"

"यह विषय अवश्य पढ़ना चाहिये। इसके बिना हमें अपने जीवन में बहुत-सी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं"—श्रीकृष्णजी ने कहा।

तत्पश्चात् उन्होंने बतलाया कि "बेटा! तुम छोटे थे तभी तुम्हारी माँ का स्वर्गवास हो गया। मरते समय उन्होंने कहा था।" देखियेगा मेरे पुत्र बालकृष्ण को किसी प्रकार की तकलीफ न हो। इसे पालपोस पढ़ा-लिखा एक मनुष्य बना दीजियेगा। "और सबसे आवश्यक बात उन्होंने मुझसे यह बतलाया कि मेरे लड़के की शादी उसकी ही इच्छा-नुसार कीजियेगा।"

"देखो बेटा! तुम्हारी शादी के लिये काशी के प्रसिद्ध सेठ श्री विलास जी आये हैं। उनकी पुत्री इन्टर पास तथा बड़ी ही सुन्दरी है यदि कहो तो उनके यहाँ शादी ठीक कर दूँ। "पिता जी! जब मुझे शादी की इच्छा होगी तो आप से कहूँगा। आशा भी रखता हूँ आप मेरी ही इच्छानुसार मेरी शादी भी करेंगे।"

"अवश्य" उत्तर दिया उसके पिता ने! वे चल पड़े और चलते समय कहने लगे जरा मन लगा कर पढ़ लो। इस साल आइ० काम० कर लोगे तो बड़ा अच्छा होगा। मैनेजर चार सौ पर रखे गये हैं, वह रुपया बच जायेगा।"

"जी अच्छा"—बालकृष्ण ने कहा।

✿

# [२१]

बच्चे चिल्ला उठे। उनके हृदय में प्रसन्नता थी। अपनी माताओं से पैसे के लिए हट करने लगे। वे कह रहे थे" पैसे दो माँ! दूध वाली आई है, बड़ा ही बढ़ियाँ दूध देती है।"

दूध बिकने लगा। कुछ दूध बेच लाड़ली आगे बढ़ी। उसने बालकृष्ण के बंगले में पहुँचते ही बरना से पूछा, "सरकार हैं?"

"अवश्य हैं"—उत्तर था।

"जरा कह दीजिये कि दूध वाली आई है, मेरा नाम तो कदाचित आप जानते ही हैं—

"हाँ हाँ।"

"कह दीजिये, आई है—फलां—?"

ऊपर जाकर बरना ने यह संदेश अपने मालिक बालकृष्ण को दिया। तुरत ही बालकृष्ण के हृदय में प्रसन्नता की लहरें दौड़ पड़ी। "जाओ कह दो ऊपर ही चली आये" बालकृष्ण ने कहा।

बरना सम्पूर्ण बातें बालकृष्ण के विषय में जानता था। वह बड़ा ही स्वामी भक्त था। तुरत जा उसने लाड़ली से कहा "ऊपर ही चली जाइये, सरकार वहीं बुला रहे हैं।" पहली भेंट हो जाने के कारण लाड़ली का डर जाता रहा था। वह बेधड़क ऊपर पहुँची। पहुँच देखती क्या है कि शराब के प्याले यत्र-तत्र पड़े हुए हैं। बोतलों की भरमार है। उसका कलेजा काँप गया। उसने कहा, "मेरे सरकार जब इस प्रकार शराब का सेवन करते हैं तो तन्दुरुस्ती कैसे ठीक रहेगी।"

"क्या करूँ लाड़ली! आदत पड़ गई है। आदत तो समाप्त होती है मौत के बाद ही न। फिर भी मैं पर्याप्त प्रयत्न कर रहा हूँ कि

छोड़ दूँ। आजकल इसकी मात्रा भी कम हो चली है"—कहते हुए बालकृष्ण ने लाड़ली को पकड़ कोच पर बिठा दिया।

नई साड़ी पहन कर बड़ी भली मालूम होती हो लाड़ली!" बालकृष्ण ने कहा।

लाड़ली शरमा गई, उसने आँखें नीची कर लीं। बालकृष्ण ने उसकी ठुड्डी पकड़ उठाते हुए कहा, "तुम इतना लजाती क्यों हो लाड़ली?"

लाड़ली ने तिरछी चितवन से देखा बालकृष्ण को।

फिर वह पृथ्वी की ओर देखने लगी। बालकृष्ण ने सोचा क्या नूरजहाँ की बेहयाई में वह आनन्द है जो इसके लज्जापन में? नहीं कदापि नहीं। दीपक तथा सूर्य में तुलना ही क्या? बालकृष्ण ने लाड़ली को पकड़ लिया। दोनों तृषित अधरों का मिलन हुआ।

"क्यों लाड़ली तुम मुझसे विवाह कर सकती हो?" "लाड़ली चुप रहीं।"

बालकृष्ण ने पुनः कहा, "लाड़ली तुम्हें पाकर मैं अपने को धन्य मानूंगा। देखो मैंने तुमसे ही विवाह करने का निश्चय कर लिया है। बोलो तुम्हारी क्या राय है?"

लाड़ली को बालकृष्ण की बातों का विश्वास नहीं हो रहा था। उसे क्या ज्ञान कि ये बातें बालकृष्ण के अंतःकरण से निकल रही हैं। वह चुप रही। वास्तव में लज्जा ही स्त्रियों का भूषण है। पुनः बालकृष्ण ने लाड़ली से कहा, लाड़ली। अबसे तुम सर पर खँचिया रखकर बाजार न जाया करो। लो यह सौ-सौ रुपये के दश नोट और इन्हीं से काम चला लो। अपने संरक्षकों को दे देना।

यदि वे तुमसे पूछें कि यह रुपया कहाँ से मिला तो जो उत्तर तुम्हें उचित जान पड़े दे देना। देखो लाड़ली तुम्हारा गाँव भी यहाँ से तीन-चार मील है। पैदल आने में तुम थक जाया करती हो। अपने गाँव से

कुछ ही दूर आने पर तो तुम्हें पक्की सड़क मिलती ही है, घनेरों इक्के-ताँगे—आया करते हैं, किसी में भी बैठकर आ जाया करो। मैं उन्हें यहाँ आने पर किराया दे दिया करूँगा।"

लाड़ली ने बहुत ही नम्रता से कहा "बहुत अच्छा सरकार!" थोड़ी ही देर बाद दरवाजे पर धक्का लगा। लाड़ली कोच से उठ पड़ी। "बैठो, बैठो, उठती क्यों हो" कहते हुए बालकृष्ण ने पूछा, "कौन है।"

"मैं हूँ सरकार!" कहता हुआ बरना सामने आया।

"क्या है?"—बालकृष्ण ने पूछा।

"सरकार! नूरजहाँ आई हैं आना चाहती हैं।"

"कह दो थोड़ी देर बाद आयेंगी।"

"बहुत अच्छा"—कहकर चलता बना बरना। नीचे जा उसने संदेश नूरजहाँ को सुनाया।

"क्यों भाई! क्या वजह है कि इस प्रकार का उत्तर मिला है"—नूरजहाँ ने पूछा। अब यह मुझे क्या मालूम। जैसी आज्ञा पाई वैसा सुना दिया।

नूरजहाँ चल पड़ी।

बालकृष्ण से इस प्रकार का उत्तर पा नूरजहाँ के हृदय में महती व्यथा हुई। नूरजहाँ ने सोचा "शिकार हाथ से निकलना ही चाहता है।" विचारों के समुद्र में उसका हृदय थपेड़े खा रहा था—वह अनमयस्का सी चली जा रही थी।

इधर बालकृष्ण ने देखा कि लाड़ली की बातचीत, हावभाव में एक विचित्र ही आनन्द है। सौंदर्य को सफल बनाने के लिये लज्जा एक अवश्यक वस्तु है जो नूरजहाँ में नहीं प्रत्युत लाड़ली में ही विद्यमान् है। "नूरजहाँ का पेशा ही है परन्तु लाड़ली का प्रेम है"—मनमें ही कहा बालकृष्ण ने।

इसी बीच लाड़ली ने पूछा, "सरकार नूरजहाँ कौन हैं ?"

"नगर की एक वेश्या है, प्यारी ! उत्तर था।

"तो क्या आप उनके वहाँ भी जाते हैं ?"

"जाता तो अवश्य रहा परन्तु अब न जाऊँगा, प्रिये !"

लाड़ली चलने को तैयार हुई। जाते समय उसने कहा "प्राण प्यारे ! मेरी एक प्रार्थना है कि आप वेश्याओं तथा शराब से सम्बन्ध छोड़ दें।"

"अच्छा प्यारी मैं पूर्णतया प्रयत्न करूँगा।"

लाड़ली नीचे उतरी। उसके साथ ही बालकृष्ण भी उतरा। सड़क पर आ दोनों खड़े हो गये। इसी समय एक ताँगेवाला उधर से आ निकला। बालकृष्ण ने उसे रोकते हुए कहा, "इन्हें वहाँ तक लेते जाओ जहाँ से मुड़ कर लोग सुखपूरा जाते हैं।

"कौन सुखपूरा सरकार ! वही जो नदी किनारे स्थित है ?"—पूछा ताँगेवाले ने, तथा कहा "१४ मील की दूरी तय करनी है। दो रुपया दीजिये सरकार।" "बहुत अच्छा" कहते हुए बालकृष्ण ने उसको रुपया अदा कर दिया। ताँगे में बैठ लाड़ली ने मधुर मुस्कराहट से बालकृष्ण का अभिवादन किया।

संध्या होते-होते लाड़ली घर पहुँची।

पहुँचते ही उसने अपनी माँ से पूछा, "गिरिवर भइया अभी नहीं आये माँ ?"

"आते ही होंगे, बेटी !" उत्तर था, तुम भोजन बनाओ। लाड़ली घड़ा ले पानी भरने के लिये चल पड़ी। सोचती जा रही थी सम्पूर्ण बातें रास्ते में। उसने स्वगत ही कहा "यदि बालकृष्ण मुझे पानी भरते देख लेता तो आशा है मजदूरे का भी प्रबन्ध हो जाता।" सम्पूर्ण दृश्य उसकी उन आँखों के सामने नाच रहा था जो कि शहर में बालकृष्ण

के बंगले पर कार्य-जगत में लाये गये थे। उसने घड़ा भर लिया। तुरन्त लौट पड़ी। आज उसे हज़ार रुपये मिले थे, उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न था। वह चाहती थी कि तुरन्त गिरिवर भइया आ जाते मैं उन्हें रुपया दिखला, दे देती। पर समय बीत ही नहीं रहा था। ठीक ही है प्रतीक्षा की घड़ी बड़ी धीरे-धीरे चलती है।

लाड़ली भोजन बनाती जा रही थी। बाहर किसी प्रकार की भी आहट यदि वह सुनती थी तो बोल उठती थी "कौन, भय्या ?" परन्तु उसकी अभिलाषा ज्यों की त्यों बनी ही रह गई।

कुछ ही समय बाद गिरिवर आ पहुँचा। पीड़ा के मारे वह कराह रहा था। कुछ ही चोट ने पता नहीं क्यों बहुत अधिक दर्द पैदा कर दिया था। लाड़ली ने यह दृश्य देख साश्चर्य पूछा, "यह कैसे, भय्या ?"

"मोटर-सग्गड़ भिड़ंत हो गयी लाड़ली !" उत्तर था। तत्पश्चात् दौड़ लाड़ली ने भय्या द्वारा लाई हुई दवा को लगाना प्रारम्भ किया। लाड़ली दवा लगाती जा रही थी और गिरिवर उससे कहता जा रहा था—

"लाड़ली ! तुमने उस दिन बिल्कुल ठीक कहा था। अभी भी कितने ही धनी हैं जो गरीबों पर सहानुभूति रखते हैं। आज ही जब घायल हो मैं दवा इत्यादि स्वयं करने लगा तो एक बाबू कोठे से पूछने लगे, "कैसे क्या हुआ।" मैंने सारा किस्सा बता दिया। उन्होंने मेरी हर प्रकार से सहायता भी की, चलते समय बीस रुपये भी दिये और कहा भी है कि अच्छा होने पर आना मैं तुम्हें नौकर रख लूँगा। "बड़े दयालु हैं हमारे मालिक लाड़ली।" कहते हुए गिरिवर ने २० रुपया दिखलाया।

"तुमसे दयालु मेरे मालिक हैं भय्या"—कहती हुई १०००) रुपया दिखलाया लाड़ली ने। यह है सुख से रहने के लिये। पहले मालिक ने ही दिया है। गिरिवर ने साश्चर्य से देखा रुपयों को।

# [२२]

संध्या समय भोजन इत्यादि कर लेने के पश्चात् गिरिवर ने एक बीड़ी जलाई। बीड़ी का कश लगाता हुआ वह चल पड़ा लीला के घर की ओर। रात्रि के नौ बजते रहे होंगे।

दीवाली का अवसर था—दीवाली अभी आने को थी—परन्तु जूए की पूर्णतया धूम मची हुई थी। आठ, छः, नौ, सात से सारा मुहल्ला गूंज उठता था। अदलू अहीर के दरवाजे पर खेल हो रहा था। जूए से आज तक यद्यपि किसी ने लाभ नहीं उठाया परन्तु पता नहीं लोग इसमें इतना आनन्द क्यों प्राप्त करते हैं? यहाँ तक कि बड़े-बड़े रईस प्रसन्नता-पूर्वक कमसे कम एक दिन खेलने तो अवश्य ही बैठ जाते हैं। उनका विचार है कि "जो दीवाली के दिन जूआ नहीं खेलता उसका जन्म छछुंदर का इसमें पूर्ण विश्वास भी है। किसी ने किस बढ़ियाँ बुद्धि से बात निकाली होगी इसे पाठक स्वयं समझें। परन्तु इतना अवश्य है कि यह और कुछ नहीं, बल्कि धार्मिक रुढ़ियां हैं।

सबकी आँखें बचाता हुआ गिरिवर लीला के घर में पहुँच गया। पहुँचते ही पहुँचते उसने पूछा, "क्यों लीला अभी जागरण हो ही रहा है?"

"आप ही की तो प्रतिक्षा थी"—कहती हुई लीला चरपाई से उठ खड़ी हुई। गिरिवर ने उसे पकड़ चुम्बन लेते हुए चारपाई पर लिटा दिया।

दीपक का मंद प्रकाश अपना कार्य करता जा रहा था। सहसा गिरिवर का ध्यान लीला की साड़ी पर पड़ा। उसने साश्चर्य पूछा, "यह साड़ी कहाँ से पाई, लीला!"

"लाड़ली ने दिया है'—संक्षिप्त उत्तर था।

गिरिवर ने स्वगत ही कहा, "लाड़ली! तुम वास्तव में बहन हो। तुम जानती हो एक न एक दिन लीला तुम्हारी ही होगी। धन्य हो तुम, धन्य हैं तुम्हारे विचार तत्पश्चात् गिरिवर ने लीला से कहा, "क्यों लीला! जब हम और तुम दोनों चाहते हैं एक होना तो क्या समाज नहीं होने देगा? हमारी तुम्हारी शादी क्या माता-पिता तथा अन्य की निगाहों से देखी जायेगी। लीला चुप रही उसके नेत्र आँसू बरसा रहे थे। उससे कुछ कहते न बना। फिर भी उसने कहा—"भुवच्छा सुता पार्वती को उसके उद्यम से रोकने में मैना (उसकी मा) समर्थ न हो सकी! तपस्या से लौटाने के लिये ध्रुव पर परमपिता की माया भी असमर्थ रही। नाथ! मैं तो देखती हूँ कि निश्चय मन को बदलने की शक्ति कहीं है ही नहीं। तो फिर हम दोनों एक दूसरे के क्यों नहीं हो सकते, हाँ इतना अवश्य हो सकता है कि हमारा उपहास किया जाय, हम बदनाम हों, पर किससे? पतित समाज से।"

जुआड़ियों के दीपक का तेल समाप्त हो चला था। सभी बोल उठे, "अदलू! चिराग़ी लेने में आगे ही रहते हो पर तेल क्यों नहीं लाकर देते।"

"अरे भाई ला रहे हैं"—अदलू ने कहा।

तेल के लिये ही अदलू ने जाकर लीला के घर वाले किवाड़ पर धक्का मारा।

"क्या है पिता जी!" कहती हुई लीला ने किवाड़ खोल दिया। गिरिवर चारपाई के नीचे छीपा हुआ था।

"बेटी! तुम किससे बातें कर रही थी"—पूछा अदलू ने।

"स्वयं ही पिताजी"—उत्तर था।

"क्या ही भोली मेरी लीला है। अच्छा तेल ज़रा लाकर दे दो"—उसने कहा, "तुम अभी तक जगी ही रही।"

"क्या करूँ, आठ, छः, सोने दें तब न ?"

"अच्छा बेटी थोड़ी तकलीफ़ ही सही। त्यौहार का मामला है"—कहता हुआ—अदलू चला गया। लीला ने पुनः किवाड़ बन्द कर दिया। गिरिवर की परतंत्रता बेड़ी टूट गई। वह हँस पड़ी, उसे चारपाई के नीचे से आते देख, पुनः उसे विषाद भी हो आया।

"तुम तो स्वयं ही बातें कर रही थी न ?"

"जी हाँ! आप हमारे ही तो हैं, तब भला स्वयं अनुपयुक्त है ?"

"बिल्कुल नहीं" कहता हुआ गिरिवर लिपट गया उससे, वह भी लिपट गई गिरिवर से। दोनों हृदय परस्पर मिले।

"अब तो मुझे शहर में नौकरी मिलने वाली है, एक बड़े ही भारी अमीर हैं उन्हीं के यहाँ, नौकरी लग जाने पर बड़ा अच्छा होगा लीला"—कह गिरिवर ने उसके अंग प्रत्यंगों पर अपना हाथ फेरा।

"सुनते हैं प्रभुता पाकर संसार में प्राणी अभिमानी हो जाता है तब तुम भी मुझे भूल ही न जाओगे ?"

"यदि तुम्हें भूल जाऊँगा तो अपने को भी भूल जाऊँगा प्यारी !"—कहा गिरिवर ने लीला से।

दोनों मिल गये। थोड़ी देर बाद—

गिरिवर ने कहा, "लीला! अब मैं जा रहा हूँ पुनः कल मिलूँगा।"

वह चला गया। लीला को सब स्वप्नवत् जान पड़ा।

❁

# [२३]

नूरजहाँ को बालकृष्ण ने लौटा दिया था। उसके हृदय में टीस हुई, वेदना थी परन्तु उसका काम बिना उससे मिले चलने को न था। अतः वह प्रातः काल ही अपने सभी आवश्यक कार्य पूरा कर चल पड़ी बालकृष्ण के बंगले की ओर।

बालकृष्ण के यहाँ आ अपने सम्पूर्ण नाज़ नखरों को अदा करती हुई नूरजहाँ ने कहा, "क्यों कुँवर! आखिर ठुकरा ही न दिया?"

"किसे?" साश्चर्य उसने पूछा।

"मुझ अभागिन को और किसे"—उत्तर था।

"नहीं-नहीं नूरजहाँ! ऐसा न कहो। कल जब तुम आई थी उसी समय मेरे पिताजी के साथी वहाँ बैठे हुए थे। बरना ने इशारे से कहा, "नूरजहाँ हैं।" मेरा आदेश था थोड़ी देर बाद आयें। तुम खीझ कर चली गई न?"—पूछा बालकृष्ण ने।

"जी हाँ, मैंने तो इनका कुछ और ही अर्थ लगाया था परन्तु अब कुछ दूसरा ही सूझ रहा है। कल मुझे वेदना हुई, व्यथा थी आपके आदेश पर, पर आज मुझे प्रसन्नता है आपकी सचाई पर, कुँवर!"

नूर! तुम अब कुछ भोली होती जा रही हो। वेश्याओं में निहत कपट और छल तुम्हारे अंदर से निकलते जा रहे हैं। तुमसे मेरा हृदय आज बड़ा ही प्रसन्न है।

"कुँवर! वेश्यायें भी औरतें ही होती हैं। उनमें औरत की मात्रा अधिक पर वेश्याओं की मात्रा कम रहती है क्योंकि औरत तो वे जन्म से हैं पर वेश्या को अपना कार्य कुछ वर्षोपरांत प्रारम्भ करना पड़ता है।

छल तथा कपट वह विकारों में से हैं जो प्रायः कुछ न कुछ मात्रा में प्रत्येक प्राणी में अवश्य पाया जा सकता है परन्तु समाज वेश्याओं को ठोकरें मार सिखलाता है कि तुम अपने इन गुणों का प्रयोग करो। यदि वेश्या-समाज छल न करें। कपट से काम न लें तो पेट भरना भी मुहाल हो जायेगा। जानते हो हृदय में महान् व्यथा रहती है, तबीयत ठीक नहीं रहती परन्तु फिर भी संध्या समय खिड़की पर बैठ लोगों को तिरछी चितवन प्रदान करना ही पड़ता है। मुस्कराने के लिये हृदय में प्रसन्नता भले ही न रहे पर मुस्कराना ही पड़ता है। कुँवर! एक ही घोषणा में सम्पूर्ण वेश्या कार्य बन्द हो सकता है परन्तु क्या उन्हें समाज स्वीकार करेगा? आशा है कदापि नहीं। तो भला ये बेचारी जाय तो कहाँ जाय।

"कुँवर! मुझे स्वयं इन कार्योंसे घृणा होती है—अवारे-लुच्चे तथा छत्तीसों कौम के गुंडों का चुम्बन भला किसे स्वीकार होगा, उनका मुँह मँहकता रहता है, शराब की बू आती रहती है परन्तु फिर भी उनसे सहना ही पड़ता है, किस लिये? पेट के लिये न? उनकी असमतें बिकती हैं, उनकी इज्ज़त लोग लूटते हैं; और चुपचाप पड़ी वे बेचारी सहा करती हैं इन सब मामलों को। क्या वेश्याओं को अपने सतीत्व का ध्यान नहीं है—? अवश्य है पर माना पूरा हो तो कैसे। अच्छा, आज आपके पास आई हूँ—नौका सैर के लिये, अंत में कहा नूरजहाँ ने, "चलिये, चला जाय।"

नूरजहाँ की बातें सुन बालकृष्ण बिल्कुल आश्चर्यान्वित सा रह गया। उसने देखा नूरजहाँ में पूर्ण सुधार होते जा रहे हैं। बालकृष्ण ने नौकर बरना को आदेश दिया कि "चाय लाओ।" दोनों ने चाय पीया। कार तैयार हो गई थी घाट पर जाने के लिये। दोनों कार में जा बैठे। वह रवाना हो चली।

इधर—

बच्चे चिल्ला उठे, "दूधवाली दूधवाली।"

लाड़ली ने कुछ दूध बेच बंगले की ओर कदम बढ़ाया। जाते ही उसने पूछा बरना से, "सरकार हैं?"

"जी नहीं"—उत्तर था।

"कहाँ गये हैं?"

"नौका सैर पर" कहते हुए बरना ने कहा, "सरकार बड़े ही रंगीले हैं। उनका झमेला बड़ा ही टेढ़ा है। प्रति दिन नई दूध वाली का दूध मिलना चाहिये।"

लाड़ली का हृदय दहल उठा। बरना द्वारा कहे गये वाक्य को वह बार-बार दुहराने लगी अपने मन में ही। उसके हृदय में टीस थी और मानसिक जगत में वेदना। वह शेष दूध बिना बेचे ही अपने गाँव की ओर चल पड़ी। जाते-जाते गाँव निकट आया परन्तु उसने अभी गाँव में जाना उचित नहीं समझा। अतः सरिता-तट पर जा बैठ गई और विचार करने लगी अमीरों की बेवफ़ाई पर। उसने मन ही मन कुछ, "मीठी मीठी बातें सुना, चाँदी के ठीकरों की लालच दे अमीर ग़रीब—अबलाओं की अस्मतें लूटते फिरते हैं। छल से, कपट से तथा किसी भी प्रकार उनकी इज्ज़त पर अवश्य पानी फेर देते हैं। क्या इन्हें परमेश्वर क्षमा करता होगा? मेरी समझ से तो उत्तर नकारात्मक ही होगा। क्या ही मनमोहक जाल बिछाया बालकृष्ण ने मेरे सामने। मैं उसमें फँस गई। मैं तो अब धोबी की कुतिया के समान हूँ जो न तो घर की ही हुई और न घाट की ही।"....मानसिक तरंगों में लाड़ली का मन गोते लगा ही रहा था कि कुछ शब्द के कारण सहसा उसका ध्यान टूटा। उसने सामने देखा—नावपर बालकृष्ण एक स्त्री के साथ बैठा है। लाड़ली उस स्त्री को पहचान गई। उसे ध्यान हो आया कि यह वही स्त्री है जिसे उसने एक दिन चाँदनी रात्रि में देखा था।

"तुम यहाँ कैसे लाड़ली ?" बालकृष्ण ने पूछा।

"यहीं तो मेरा घर ही है, फिर रहती कहाँ ?" उत्तर था। उसका हृदय खिन्न था। उसे अभी भी वे बातें याद थीं, "उन्हें प्रतिदिन नई दूधवाली चाहिये।" और इस समय उसका हृदय पूर्णतया डाह-मय था—नूरजहाँ को बालकृष्ण के साथ देख। भला यह सह्य ही कैसे हो सकता है किसी भी स्त्री के लिये !"

"अच्छा दूध पिलाओ"—कहता हुआ बालकृष्ण नाव से उतर शिलापट्ट पर आ गया।

"ऐसा ही मालूम होता है कि यह दूध मेरे ही लिये बंगले पर गया था परन्तु मैं वहाँ न मिल सका" कहते हुए बालकृष्ण ने लाड़ली की ठुड्डी पकड़ लिया और पुनः कह उठा, "क्यों लाड़ली! कुछ अप्रसन्न सी दिखलाई दे रही हो क्या ?"

"अप्रसन्न हो मैं आपका कर ही क्या सकती हूँ ?"

"बहुत कुछ कर सकती हो प्रिये !" बालकृष्ण ने उत्तर देते हुए चुम्बन लिया। तत्पश्चात् दूध पीया। आज का दूध कुछ और ही भाँति से तैयार था। लाड़ली ने उसे खूब जला उसमें कुछ चीनी भी मिला दिया था। पीते-पीते बालकृष्ण का हृदय आह्लाद पूर्ण हो गया। उसने सोचा "क्या नूरजहाँ द्वारा दिये गये शराब में भी यह स्वाद मिल सकता है ?"। कदापि नहीं, "उसके हृदय के अंतरस्थान ने स्पष्ट किया।

"तूने आज बहुत ही बढ़ियाँ दूध पिलाया" कहते हुए बालकृष्ण ने उसके हाथों में बीस रुपये रख दिये। "अच्छा अब जाओ। मैं भी जाऊँगा नगर की ओर देर हो रही है" कहा बालकृष्ण ने।

वह चल पड़ी, चल पड़ा वह भी !

नूरजहाँ ने कहा, कुँवर इससे बहुत हिले मिले हो। यह है कौन ?"

"देखो नूरजहाँ ! तुम मेरी सिधाई का नाजायज़ फ़ायदा उठाने की

चेष्टा न किया करो। "यह कौन है" इसे तुम जान कर क्या करोगी और इससे तुझे लाभ ही क्या?"

नूरजहाँ चुप रही। उसने मन ही मन कहा "सचमुच मैं इनकी होती कौन हूँ जो मेरा दबाव इन पर पड़ सके। मैं रुपये की भूखी हूँ, प्रेम की नहीं। पर इतना अवश्य है कि यदि वह युवती मेरे बारे में इनसे पूछती होती तो ये अवश्य ही मेरा परिचय बतला देते। क्यों? इसीलिये कि वह इनसे प्रेम करती है और यह भी प्रेम के ही पुजारी हैं। मुझे तो इनके यहाँ शरण मिलती है और मिलेगी तभी तक जब तक कि इन्हें आमोद-प्रमोद के लिये कोई प्रेम मूर्ति नहीं उपलब्ध हो जाती। क्या मेरा भी जीवन कोई जीवन है। नहीं-नहीं बिल्कुल नहीं, वेश्या कर्म सबसे नीचा है। यदि मैं भी आज किसी की होती तो मेरा उस पर पूरा हक़ रहता। मैं वृद्धत्व तक उसकी रहती परन्तु मुझे क्या कोई बुढ़ापे में पूछेगा? सम्भव नहीं।"

नाव चली जा रही थी और उसके साथ ही चले जा रहे थे वे दोनों।

❀

[२४]

आकृति, चेष्टा, भाव, वचन, रूप, अनुभव, नयन-सयन, मुख-कांति देख प्राणी हृदय की गति पहचान ही लेता है। बालकृष्ण को भी पता चल गया कि नूरजहाँ के हृदय में उथल-पुथल मची है। परन्तु उसमें और खलबली उपस्थित करना उसने नहीं चाहा।

मोटर कार में सवार हो वे दोनों चले जा रहे थे थोड़ी ही देर पश्चात् नूरजहाँ का घर आया। कार रुक गई, नूरजहाँ कार से उतर चट ऊपर जाने लगी। बालकृष्ण ने कहा, "क्यों नूर! मुझे अपने साथ न ले चलोगी?"

नूरजहाँ कुछ उत्तर देना ही चाहती थी कि इसी समय राहत भी वहाँ आ पहुँचा। वह तुरन्त बोल उठा, "ज़रूर चलें सरकार। आप ही का तो इन्तजार था।"

राहत बालकृष्ण को साथ ले ऊपर पहुँचा नूरजहाँ पहले से ही पहुँच चुकी थी।

पहुँचते ही बालकृष्ण ने कहा, "क्यों नूर! आज नाराज़ हो?"

"मैं आपकी होती कौन हूँ जो नाराज होऊँ।"

"तुम हमारी सर्वस्व हो। पर...."कहता हुआ बालकृष्ण उसके निकट पहुँच गया। अवसर देने के लिये राहत दूसरी ओर चला गया।

"नूरजहाँ आज शराब पीये मुझे कई दिन हो गये। रह-रह कर गश आ जाता है। कुछ पिला दो तो बड़ा ही एहसान मानूँगा"—कहा बालकृष्ण ने।

"क्यों, आपने कई दिन से शराब नहीं पीया है!"

"अवश्य नहीं।"

"क्यों ?"

"इसीलिये, कि यह हानिप्रद है।"

"फिर आज क्यों पीना चाहते हैं ?"

"आदत से विवश हूँ।"

"अच्छा एक बात और बतलाइये, आपको शराब न पीने की शिक्षा किसने दी।

"उसी युवती ने जिससे नदी तट पर भेंट हुई थी।"

"मैं भी आज हठ करती हूँ आप कृपया शराब न पीजिये। नहीं तो मांस रक्त से क्षीण हो आप बहुत शीघ्र ही पयान कर देंगे।"

"अच्छा तब चाय ही पिला दो।"

"हाँ यह ठीक है।"

दोनों चाय पी मस्त हुए। पर शराब की वह मस्ती कहाँ। शराब शराब ही है और चाय चाय ही। बालकृष्ण ने नूरजहाँ को अपनी ओर खिसकाना चाहा। उसी समय नूरजहाँ बोल उठी "कुँवर! सबसे भयानक कार्य संसार में सम्भोग ही है। इससे बचते रहने पर मनुष्य दीर्घायु होता है। देखो, इस समय मुझे इन कार्यों से घृणा हो रही है! मुझे स्वयं पर घृणा है तुम मान जाओ। हठ करना व्यर्थ है। नहीं तो संसार में तुम्हें उल्लू.......।

× × ×

किवाड़ पर धक्का लगा। नूरजहाँ ने दौड़ किवाड़ खोल दिये। बाहर खड़ा था राहत। उसने कहाँ,—पर इतने जोर से कि किसी प्रकार बालकृष्ण भी उनकी बातें सुन ले—"सेठ अमीचन्द आया है कह रहा है कि मेरे १०८०) अभी लाकर दे दो वरना ठीक न होगा।"

नूरजहाँ तो पहले सहम गई पर राहत के डर से तुरत बोल उठी; "तो इस समय कहाँ से रुपये लाऊँ, कह दीजिये सबेरे मिल जायेगा।"

"मैंने तो उससे बहुत कहा पर वह मान नहीं रहा है। लाख मिन्नतें की पर सुने तब तो"—राहतने कहा।

इसी बीच बालकृष्ण भी उनके पास आ गया। आते ही बालकृष्ण ने कहा, "क्या बात है उस्ताद।"

"कुछ नहीं सरकार! आप चलें। ये अभी जा रहीं हैं।" नहीं बतलाओ क्या बातें हैं। बालकृष्ण ने कहा।

राहत ने कहा, "सरकार! इसी शहर के अमीचन्द सेठ का यही हार बनवाते समय (नूरजहाँ के गले की ओर इशारा करता हुआ) एक हजार रुपये बाकी रह गये हैं। उन्हीं रुपये के लिये उसने नाकों दम कर दिया। रातदिन उसका तग़ादा करता रहता है। रुपये जुटते नहीं कि दे दिया जाय। आज वह फिर आया है मैं बार-बार कहता हूँ पर वह जाता नहीं। कह रहा है कि "अभी रुपया लेकर ही जाऊँगा।" वह चुप हो गया।

"खैर कोई बात नहीं, रुपये मेरे पास हैं मैं दिये देता हूँ। १०००) रुपया क्या वस्तु है नूरजहाँ के लिये"—कहते हुए बालकृष्ण ने नूरजहाँ की ओर देखा। नूरजहाँ के मुखमण्डल पर उदासीनता की रेखा खिंच गई थी। जब बालकृष्ण ने उसकी ओर देखा तो उसने अपना मस्तक नीचे कर लिया। पर बालकृष्ण ने इस उदासीनता का अर्थ कुछ और ही लगाया। झट उसने अपने कोट की जेब से एक नोट निकाल राहत को दे दिया। नोट देखते ही राहत बोल उठा, "सरकार आप रहने दें। आपके जिम्मे हज़ारों काम हैं। कहीं ऐसा न हो कि आपको तत्काल रुपये की जरूरत पड़े।

"नहीं, नहीं कोई हर्ज नहीं, आप इसे सहर्ष लेकर उसे दे दें। नूरजहाँ को साथ ले पुनः बालकृष्ण कमरे में आ गया। फिर किवाड़ बन्द हो गये। पंखा चलने लगा। आनन्द की सरिता में नहाने लगे वे दोनों।

रुपया लेने के लिये राहत ने एक ड्रामा खेला था जिसमें वह पूर्ण-तया सफल रहा। यद्यपि इस ड्रामा की रचना नूरजहां ने ही की थी। पर ऐसा मालूम होता था कि नूरजहाँ इस षड्यन्त्र से पूर्ण अनभिज्ञ है।

वह नहीं चाहती थी कि निर्दोष बालकृष्ण को चूसा जाय परन्तु वह अपने पेशे के कारण मजबूर थी। वह राहत के इशारे पर चलने वाली थी। उसने बालकृष्ण से कहा भी था, "कुँवर हठ करना व्यर्थ है नहीं संसार में तुम्हें उल्लू...।" 'बनना पड़ेगा' शब्दावलि वह कह न सकी थी।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नूरजहाँ सर्वदा से ही ऐसी थी। नहीं; दो तीन दिनों से उसने जीवन के विषय में खूब सोचा था। सच-मुच ही उसे इस वेश्याकार्य से घृणा अवश्य होती जा रही थी। फिर भी परवश नारी आखिर कर ही क्या सकती है।

उसने कहा, "कुँवर! तुम छल कपट हो?"

"अवश्य!"

"नहीं, मुझे विश्वास नहीं—" नूर ने कहा।

"नूरजहाँ! मुझे छल तथा कपट से बहुत द्वेष है। जहाँ कहीं भी मैं इसे देखता हूँ उसे दूर करने की कोशिश करता हूँ। परन्तु पता चल जाने पर कि यह कपट असाध्य है, हटाया नहीं जा सकता वहाँ से सम्ब-न्ध भी छोड़ देता हूँ। तुमसे मेरा प्रेम बढ़ता जाता है क्योंकि तुम सुधरती जाती हो, मुझे पूर्ण विश्वाश है—" बालकृष्ण ने कहा।

"अब रात अधिक बीत गई, चलना चहिये नूर!"

"बहुत अच्छा कुँवर!" कहा नूरजहाँ ने। वह चल पड़ा।

# [२५]

गिरिवर के घाव अब अच्छे हो चले थे। ज्यों-ज्यों उसकी दशा अच्छी होती जाती थी त्यों-त्यों वह प्रसन्न होता जाता था। उसे आशा थी—विश्वास था कि उसे नौकरी अवश्य मिलेगी।

दो दिन बाद—

प्रातःकाल होते ही गिरिवर बालकृष्ण के बंगले पर पहुँचा। जाते ही जाते बरना से उसने पता लगाया कि सरकार हैं पर, वे अभी स्नानोपरांत जब जलपान इत्यादि कर लेंगे, तो किसी से मिलेंगे। वह प्रतीक्षार्थ नीचे ही बैठ गया।

कार्यों से छुट्टी पा बालकृष्ण कुर्सी पर बैठ पुस्तिकावलोकन करने लगा। इसी बीच बरना ने कहा, "सरकार! एक आदमी आया है, जो आपसे मिलना चाहता है। शायद आपने उसे बुलाया भी है।'

"ऊपर ही बुला लाओ" आदेश था। बरना नीचे चला गया और उसे साथ ले पुनः बालकृष्ण के सम्मुख उपस्थित हुआ।

गिरिवर ने तुरत झुक कर बालकृष्ण को प्रणाम किया।

बालकृष्ण ने कहा, "ओ तुम्हीं हो, गिरिवर।"

"जी हाँ अच्छा हो जाने पर दर्शन कर पाया हूँ"—उत्तर था।

"खैर कोई बात नहीं। तुम्हें नौकरी चहिये। अच्छा तुम चौकीदार का काम कर सकते हो?"

"कौन-कौन काम रहेंगे, सरकार।"

"डिमडिमा छावनी में तहसीलदार के साथ तुम्हें रहना होगा। इलाके में जा मालगुज़ारी वसूल करनी होगी तथा कुछ लोगों को बुलाकर तहसीलदार के सामने पेश करना ही तुम्हारा काम होगा। बस और क्या" बालकृष्ण ने कहा।

"इन सब कामों को तो मैं बड़ी प्रसन्नता से कर सकता हूँ सरकार!" उत्तर दिया गिरिवर ने।

"अच्छा तब आज से तुम्हारी तैनाती हो गई। यह पत्र लेकर तुम तहसीलदार के पास चले जाओ।" तदन्तर बालकृष्ण ने—गिरिवर की फोटो खींचता हुआ—उसका पूर्ण पता लिखा। छावनी पर जानेके लिये गिरिवर चल दिया। इसी बीच बालकृष्ण ने पुकारा, "बरना! बरना!"

"जी हाँ, "कहता हुआ बरना तुरंत आ पहुँचा। "जाओ, सुखदेव हलवाई के यहाँ पहुँचकर तुम दोनों भोजन कर लो"—कहते हुए बालकृष्ण ने बरना को एक पाँच रुपये का नोट दिया। वे दोनों चल पड़े।

भोजनोपरांत गिरिवर ने प्रस्थान किया छावनी के लिये।

छावनी पर पहुँचते ही गिरिवर की सर्वप्रथम भेंट कुटिल नाम के एक व्यक्ति से हुई। जो पहले से ही चौकीदारी का काम किया करता था। कुटिल विक्रमपुर नामक गाँव के अयोध्या अहीर का पुत्र था। इसका नाम ठीक इसके स्वभाव का द्योतक था। इसकी परम इच्छा थी कि सुखपुरा के चौधरी फिरंगी अहीर की लड़की बीना से उसकी शादी हो जाय परन्तु सफलता उसे प्राप्त होते दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। चौधरी अपनी लड़की की शादी उक्त गिरिवर से ही करना चाहता था यद्यपि यह बात गिरिवर को बिल्कुल ही मंजूर न थी। परन्तु कुटिल जलने लगा था गिरिवर से ही। उसे क्या पता कि गिरिवर इस मामले में निर्दोष है।

समय बीतता जा रहा था।

गिरिवर को पत्र दे तहसीलदार के यहाँ जाने के लिये रवाना कर बालकृष्ण पुनः वही पुस्तक पढ़ने लगा।

थोड़ी ही देर में नूरजहाँ भी आ पहुँची। दोनों मिल गये। बालकृष्ण ने प्रार्थना की कि आज अवश्य पिलाओ अन्यथा अब तबीयत बहुत ही खराब हो जायेगी।

नूरजहाँ ने आलमारी खोल, जाम भरा और उसे बालकृष्ण के अधरों से लगा दिया। बालकृष्ण गट-गट सब पी गया। पुनः उसने हठ

किया नूरजहाँ से कि वह भी पी ले। ऐसा ही हुआ भी। दोनों शराब के नशे में मस्त हो गये। मस्ती ज्यादा थी बालकृष्ण को क्योंकि आज उसने पाँच छः दिन के बाद पीया था। बालकृष्ण ने नूरजहाँ का चुम्बन लिया और उसे गोदी में लें; जा पड़ा कोच पर।

इसी समय लाड़ली भी फाटक पर पहुँची चूँकि उस समय बरना मौजूद न था अतः वह बिना किसी से पूछे ही बालकृष्ण के कमरे की ओर बढ़ चली। झट उसने किवाड़ खोला सम्पूर्ण दृश्य तो यद्यपि नूर-जहाँ की चालाकी के कारण वह देख न सकी परन्तु समझ तो अवश्य गई। शराब की बोतलें जमीन पर पड़ी हुई थीं।

बालकृष्ण मस्त था। वह यह न समझ सका कि दरवाजा खोलने वाली उसकी लाड़ली ही है बल्कि उसका संदेह बरना पर पड़ा। यही संदेहात्मक भावना उसके हृदय में अटल हो गई। शराब की मस्ती में वह देख न सका परन्तु समझ लिया कि बरना ही है।

"मैंने तुम्हें कई बार बतलाया कि जब हम दोनों रहें तो तुम न आया करो पर मानते क्यों नहीं पता नहीं चलता"—बालकृष्ण ने कहा।

लाड़ली ने, जो काठ की भाँति खड़ी थी, चेतना शक्ति जागृत हुई। वह समझ गई कि कालकृष्ण मुझे ही डाँट रहा है। चल पड़ी तुरंत नीचे की ओर पुनः किवाड़ बन्द हो गये। पंखा चलने लगा। उसी समय बरना ने आ संदेश दिया—चलते समय लाड़ली ने बालकृष्ण की दी हुई अंगूठी लौटाने के निमित्त बरना को दे दिया—"सरकार! बड़े सरकार आ रहे हैं।"

नूरजहाँ खिड़की के रास्ते भगी जा रही थी। सेठ श्रीकृष्ण ने उसे कुछ कुछ देख भी लिया। बालकृष्ण के बारे में भिन्न-भिन्न दिशाओं से आई हुई शिकायतें उन्हें सही जान पड़ीं।

वे तुरन्त बालकृष्ण के कमरे में पहुँचे। देखते क्या हैं कि बालकृष्ण

शराब की बोतलें तथा जाम हाथ में ले आलमारी की ओर चला जा रहा है।

"ठहर जाओ"—श्रीकृष्णबाबू ने कहा। बालकृष्ण नीचे सर किये खड़ा था।

"लाओ ये बोतलें तथा शराब के प्याले मुझे दो"—श्रीकृष्णबाबू ने कहा।

बालकृष्ण ने ला उनको समर्पित किया। पुनः श्रीकृष्ण ने बरना को बुला उन तमाम बोतलों तथा चाँदी के जामों को तुड़वा कुँए में फेंकवा दिया। सभी कुछ हुआ परन्तु बालकृष्ण को उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। क्योंकि उसकी तमाम बुराइयों के एक मात्र जिम्मेदार वही थे। बालकृष्ण के पिता ने अपने मन में सोचा कि उनका असर बालकृष्ण पर बिलकुल ही नहीं पड़ रहा है। यही सोचकर कि बालकृष्ण सुधर जाय उन्होंने उसके रहने के लिये अलग बंगला भी बनवाया था। जब पुत्र पिता की अच्छी सीख को भी ठुकराकर मनमाना कार्य करे तथा नशीली वस्तुओं का सेवन कर वेश्यागामी बन जाय तो भला ऐसा पुत्र ही किस काम का !...आदि बातें श्रीकृष्णजी अपने मन ही मन कहने लगे।

"अच्छा, कपड़े पहन दूकान पर चलो"—श्रीकृष्ण बाबू ने कहा।

बालकृष्ण तैयार हो गया। थोड़ी ही देर बाद दोनों चल दिये।

जाते समय उन दोनों के मुखमण्डल पर असीम वेदना की लहरें लहरा रही थीं। दोनों ही चिन्तित थे परन्तु वे एक दूसरे से कुछ बोल न सके। "अधिक हर्ष या विषाद के समय गला रुँध ही जाता है" बिल्कुल सत्य है। श्रीकृष्ण जी को अपने किये पर पूर्ण ग्लानि थी और ठीक यही हालत थी बालकृष्ण की भी।

कार चली जा रही थी साथ ही चले जा रहे थे वे दोनों।

❁

# [२६]

बालकृष्ण को मैनेजर के साथ दूकान पर बिठा श्रीकृष्ण बाबू स्वयं बालकृष्ण के बंगले पर आ गये। ऊपर जा कोच पर सो उन्होंने पुकारा "बरना! बरना!"

"जी हाँ!" कहता हुआ बरना तुरत उनके सम्मुख उपस्थित हुआ।

"जाओ राहत को बुला लाओ, जानते हो उसे न?"

"जी हाँ, वही राहत न, जो तबालची है..."

"हाँ, हाँ, वही!"

बरना चल पड़ा। उसके हृदय में भाँति-भाँति की बातें उठ रही थीं। उसे संदेह हुआ शायद सरकार ने नूरजहाँ को भी देख लिया है। सोचते विचारते वह चला जा रहा था। राहत के मकान पर पहुँच सड़क पर से ही उसने पुकारा "राहत उस्ताद! राहत उस्ताद!!"

"कौन है?" प्रश्न किया गया।

"जरा सामने भी तो आइये।"

तब तक राहत सामने आ गये। "क्या है बरना?" उन्होंने पूछा उससे।

"बड़े सरकार आपको बुला रहे हैं जल्दी चलिये।" "बड़े सरकार।" साश्चर्य पूछा राहत ने।

"जी हाँ" उत्तर था।

"अच्छा चलो" कहकर राहत भी उसके साथ ही चलने लगा। उसके हृदय में भाँति-भाँति की भावनायें आने लगीं। "कई वर्ष हुए उन्होंने मुझे याद किया था क्या उसी के लिये आज भी बुला रहे हैं... अरे नहीं, कोई दूसरा काम होगा," उसने स्वगत ही कहा।

थोड़ी देर पश्चात् बरना राहत को साथ ले श्रीकृष्ण बाबू के सम्मुख उपस्थित हुआ।"

"बैठो उस्ताद"—कहते हुए सरकार ने बरना की ओर इस प्रकार देखा मानों उनकी आँखें कह रही हों कि "तुम अब यहाँ से हट जाओ।"

श्रीकृष्ण बाबू ने कहा, "देखो उस्ताद तुम हमारे पूर्व परिचित हो। तुम से एक काम है, मैं आशा करता हूँ कि तुम उसे अवश्य पूरा करोगे।"

"पूरा करने की जरूर कोशिश करूँगा सरकार! आप उस काम को तो पहले बतलाइये"—राहत ने कहा।

"सुनो यही कार्य है। पिता कितना ही नालायक तथा निकम्मा क्यों न हो वह कभी भी यह नहीं चाहेगा कि उसका पुत्र कुमार्गगामी बने। पिता के दिल में उसे अच्छे रास्ते पर लाने की चिन्ता सदैव बनी रहती है।

मैंने सुना है—सुना क्या है देखा भी है—बालकृष्ण का सम्बन्ध तुम्हारी नूरजहाँ से है। उस्ताद! यदि इस सम्बन्ध को तुम छुड़ा देते हो तो मैं तुम्हारा आजन्म ऋणी रहूँगा। मेरा बेटा तुम्हारा भी बेटा ही है। अपने बेटे के लिये इतना कार्य तुम अवश्य करो। अब रहा प्रश्न रोटी का। इसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। तुम्हें हमारे यहाँ से प्रतिमास चार सौ रुपये मिल जाया करेंगे कहो तो शर्त भी लिख दूँ"—श्रीकृष्णजी ने कहा।

"वाह हुजूर! क्या आपकी बातों का मुझे विश्वास नहीं कि मैं आपसे प्रतिज्ञा-पत्र लिखवाऊँ। इसकी हमें आवश्यकता नहीं। पर अब रही बात सम्बन्ध छुड़ाने की। यही बात मेरी समझ में नहीं आ रही है कि क्या करूँ—" राहत ने कहा।

"करना क्या है जब बालकृष्ण तुम्हारे यहाँ पहुँचे उसे बेइज्जत कर

अपने बंगले से बाहर कर दो, बस और क्या"—कहा सरकार ने।

"बहुत अच्छा सरकार—!" कहता हुआ राहत चल पड़ा।

श्रीकृष्ण बाबू भी कार में बैठ अपनी दूकान पर पहुँचे। उनके मुख-मण्डल पर संतोष के चिन्ह थे।

दूकान पर पहुँच उन्होंने बालकृष्ण को बड़ी मुस्तैदी से काम करते पाया। उनके असंतोष के बादल संतोष पवन के झँकारों से तितर-बितर हो गये। वे प्रसन्न थे।

× × ×

राहत के अपने घर पहुँचते ही नूरजहाँ ने पूछा, "बतलाइये, सरकार क्यों बुलाये थे।" राहत ने सारा सदेश नूरजहाँ के सम्मुख उपस्थित करना अच्छा समझा। तदनन्तर उसने नूरजहाँ से पूछा, "क्यों श्रीकृष्ण बाबू को जानती हो?"

"जी हाँ अभी-अभी तो आपने उनका जिक्र किया।" "और क्या इससे पहले तुमने उन्हें नहीं जाना था।"

"जी नहीं।"

"मेरी नूर! श्रीकृष्ण बाबू वही व्यक्ति हैं जिनके साथ तेरी पहली रात ३००० रुपये पर बीतीं थी और तुमने उन्हें भुला दिया?"

"उस समय तो आपने उनका परिचय ही नहीं दिया भला क्योंकर याद रहते वे?"

उस्ताद ने सारा हाल कह सुनाया।

नूरजहाँ ने पुनः कहा, "अच्छा इन सब बातों को अब आप छोड़िये। मुझे बालकृष्ण को ठुकराना तथा श्रीकृष्ण को अपनाना है।

ठुकराने का मतलब यह नहीं है कि बालकृष्ण से अब मेरा कुछ सम्बन्ध ही न रहेगा। नहीं, नहीं, वह मेरा बेटा बनेगा और मैं उसकी

मॉ। यही इच्छा है उस्ताद। वेश्या-कार्य निन्दनीय है—इसमें इज्जत कहाँ, जैसा कि आपने ही एक बार मुझ से कहा था। मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि आज से मेरे शरीर का स्पर्श श्रीकृष्ण बाबू के अतिरिक्त और किसी पुरुष से नहीं हो सकता।"

"यह क्या कह गई नूरजहाँ! बुढ़ापे मे मेरा कैसे गुजर होगा यह भी क्या तुझे नही सोचना चाहिये? मैंने तुझे पाला पोशा, इसी कार्य के लिये न। नही, नही, ऐसा नही हो सकता। केवल बालकृष्ण से सम्बन्ध छुड़ाना है उसके लिये चार सौ रुपये भी मिलेंगे।

नूरजहाँ चुप रही। उसे ध्यान हो आया था परमपिता परमेश्वर का, सोच रही थी "गणिका ने भी तो मेरे ही समान कार्य किये होंगे क्या उसे भगवन् ने मोक्ष नही दिया। अवश्य दिया श्रीकृष्ण! तुम हमारे स्वामी हो, बालकृष्ण! तुम हो हमारे बेटे। बस आज से माँ बेटे का ही सम्बन्ध रहेगा। सत्यनाम! सत्यनाम!! जपने लगी।

❀

# [२७]

श्रीकृष्ण बाबू अपने कुँवर बालकृष्ण के साथ बैठ मैनेजर साहब से कुछ बातें कर रहे थे। इसी बीच फ़ोन की 'घननननन' घंटी बजी। मैनेजर ने रिसीवर हाथ में उठाते हुए कहा, "हलो, मैनेजर, श्रीकृष्ण एंड सन्स, जामगंज, बाँकुड़ा। आप कहाँ से बोल रहे हैं?"

"मैं डिमडिमा छावनी से बोल रहा हूँ, तहसील टी० ए० सिंह। देखिये, समाचार यह है कि बक्स से हजार-हजार रुपये के पाँच नोट गायब हैं। पता नहीं किसने लिया। आप शीघ्रातिशीघ्र घटनास्थल पर पहुँच कर उचित प्रबन्ध करेंगे, ऐसी ही आशा है।

समाचार सुना श्रीकृष्ण बाबू तथा बालकृष्ण ने भी। वे तुरत उठ पड़े।

श्रीकृष्ण बाबू झट चौक के दारोगा के पास पहुँचे। उन्हीं के हल्के में डिमडिमा छावनी थी। दारोगा ने पूजा का प्रश्न किया। दो हजार रुपये सेठजी ने गिना। वे मोटर में बैठ चल दिये तहक़ीकात करने।

पुलिस का प्रबन्ध सरकार के द्वारा जानोमाल की हिफ़ाजत के लिये किया गया है। परन्तु आये दिन हम देखते हैं कि उनसे कोई लाभ नहीं हाँ हानि की सम्भावना अवश्य है। माल चोरी चला जाय उसका पता लगाना उनका ही कार्य है परन्तु यदि हम निर्धन हैं, पुलिस देवी की अर्चना भली भाँति चाँदी के ठीकरों से हम न कर पाये तो वह हमारी सहायता नहीं कर सकती। पुलिस के इन्हीं गुणों से युक्त दारोगा महाशय भी थे। खैर उनकी तो पूजा खूब मजे में हुई अतः वे चल पड़े थे तहकीकात करने।

घटनास्थल पर पहुँच लोग देखते क्या हैं कि बक्स का ताला तोड़ा हुआ है, सभी सामान ज्यों का त्यों पर रुपये पाँच हजार गायब हैं।

दारोगा ने कुटिल को बुलाया और कहा, "देख कुटिल! यह सिवा किसी जानकार आदमी के दूसरे का काम नहीं हैं। यदि रुपया लिया है तो अच्छी तरह दे दे, नहीं तो डंडे पीठ के चमड़े निकाल ही लेंगे।"

"सरकार मैं रुपये के बारे मे कुछ भी नहीं जानता। मैं तो बहुत पुराना आदमी हूँ। यदि ऐसी मेरी आदत होती तो बहुत पहले ही निकाल दिया गया होता"—कुटिल ने कहा।

"जी हाँ चार वर्ष के दौरान में कुटिल ने ऐसी हरकत तो कभी नहीं की"—सेठ जी ने कहा।

पुनः दारोगा जी ने गिरिवर को बुलाया और कहा, "गिरिवर! यदि रुपया लिया हो तो दे दो अन्यथा बड़ी ही दुर्दशायें सहनी होंगी।"

"नहीं सरकार! मैं रुपये के बारे में कुछ भी नहीं जानता"—गिरिवर ने कहा। तत्पश्चात् दारोगा के आदेशानुसार गिरिवर की जब तलाशी ली जाने लगी तो उसकी गन्जी के जेब से एक हज़ार रुपये का नोट निकला। दारोगा ने उस रुपये को हाथों में ले लिया तत्पश्चात् लगे उस पर बेंत गिरने। पीठ खून से लाल हो गई वह कहता जा रहा था, "सरकार यह तो हमारा नोट है।"

"बेवकूफ! पन्द्रह रुपये की नौकरी करते हैं और इनके पास हज़ार रुपया रखा है"—दारोगा ने कहा। पुनः मार पड़ने लगी। गिरिवर चिल्लाने लगा सेठ ने चूँ तक भी नहीं किया। यदि गिरिवर सेठ की हिफ़ाजत नहीं किये होता तो आज से ही दस दिन पहले डाकू सेठ का खून चूस गये होते।

"पर धन्य हो पूँजीवाद के पुजारी! तुम लोग धन्य हो!!"

क्या हक है तुम्हें दौलत इकट्ठा कर अपने पास रखने का, जब कि देश की अधिकांश जनता अन्न के बिना तड़प रही हो। एक रात के लिये एक वेश्या को ३०००) दे सकते हो पर झूठ-मूठ पीटे जाते हुए

ग़रीब—लाल को छुड़ाने की शक्ति तुम्हारे अन्दर नहीं है ? क्या सबूत था कि गिरिवर के जेब से निकला हुआ वह नोट उन्हीं नोटों में से एक था ! सेवक इन पूँजीवाद के पुजारियों की तरह कितनी ही अर्चना तथा सेवा क्यों न करें पर ये पतित पिघलते नहीं। पूँजीवाद ! देखें तुम कब तक रहते हो ?"

गिरिवर बेहोश हो गया। उसे हवालात में डाल दिया गया। उस पर मुकदमा चलने लगा। कुटिल प्रसन्न था। सभी कुछ करता हुआ भी वह बचा रहा, इसकी ही उसे महती प्रसन्नता थी। उसने यह संदेश गिरिवर के घर भी भेज दिया। मुकदमे की पहली तारीख़ के विषय में भी उसने सूचना दे दी।

[२८]

दूकान का कार्य समाप्त कर लौटते समय श्रीकृष्ण बाबू अपने पुत्र बालकृष्ण को उपदेश देने लगे, "बेटा! ग़लती मनुष्य से ही होती है इसलिये जो ग़लतियाँ हो चुकी हैं उनके लिये अफ़सोस करना व्यर्थ है। परन्तु हाँ, एक बात पर तुम्हें ध्यान देना चहिये कि अब ग़लतियाँ न होने पायें।

"नहीं होंगी पिता जी!" कहता हुआ बालकृष्ण अपने बंगले की ओर चल पड़ा। गिरिवर की उसे महान् चिन्ता थी। वह हवालात में था यह सुन उसका कलेजा दहल उठता था। विचारों के सागर में डूबता उतराता वह चला आ रहा था। कार बंगले पर आ लगी। वह उससे उतर अपने विश्राम भवन की ओर चल पड़ा।

बरना ने पहुँचते ही ट्रे ला टेबुल पर रख दिया। और सारा किस्सा सुनाया कि सरकार आये थे। उन्होंने मुझे भेज राहत को बुलाया। पुनः उन दोनों में घंटों बातें हुईं इत्यादि। "डरा हुआ क्या डरेगा"— यही दशा थी बालकृष्ण की। आज तो उसके पिता ने उसकी सारी करामातें देख ही ली थीं।

वह चुपचाप सुनता रहा।

तदंतर बरना ने लाड़ली की दी हुई अंगूठी बालकृष्ण को लौटा दिया। देखते ही बालकृष्ण आश्चर्यान्वित सा रह गया! उसने साश्चर्य पूछा, "ऐं यह क्या, यह अंगूठी तुम्हें कैसे मिली।"

"सरकार! लाड़ली आई थीं उन्होंने ही यह अंगूठी मुझे दिया कि सरकार को दे देना"—बरना ने कहा।

"कब आई थीं वह?"

"कल, बड़े सरकार के आने से थोड़ी ही देर पहले। उतरते समय मैंने देखा, यद्यपि दूर से ही, वह रोती हुई चली जा रही थी"—उत्तर था।

"जब नूरजहाँ मुझसे बात कर रही थी तो क्या किवाड़ खोल उस समय तुम नहीं आये थे"—पूछा उसने।

"जी नहीं।"

महान् व्यथा से बालकृष्ण का हृदय काँप उठा। उसने सोचा तथा जान लिया कि शराब की मस्ती में किवाड़ खुलने पर मैंने जो कुछ बुरा-भला कहा, वह सब उसी के लिये था। हाय! अब क्या करूँ। बेचारी के हृदय में महती पीड़ा हुई होगी। अब वह मुझसे न मिल सकेगी। परन्तु मैं तो उससे अवश्य मिलूँगा वह मुझे क्षमा कर देगी ऐसी ही आशा है, क्योंकि है वह भोली।

अच्छा बरना! देख अब मैं ज़रा नूरजहाँ के यहाँ जा रहा हूँ संदेशा लेता आऊँ। पर चूँकि पिता जी बहुत सशंकित हैं, अतः हो सकता है कि वे कहीं आ न जायँ। इसलिये तुम यहीं रहो और यदि आयें तो उनसे कह देना "ठीक अभी अभी 'कम्पनी गार्डेन' में गये हैं।" मैं बहुत शीघ्र ही लौटूँगा।

"अच्छा जाइये, मैं यहाँ अवश्य रहूँगा"—बरना ने कहा।

बालकृष्ण नूरजहाँ के यहाँ जाने के लिये चल पड़ा।

× × ×

नूरजहाँ की प्रतिज्ञा से आप भिज्ञ हो चुके हैं। राहत ने बहुत समझाया उसे, परन्तु वह मान न सकी। राहत समझा ही रहा था कि इसी बीच बम्बई का एक सेठ गाना सुनने के लिये वहाँ पहुँचा। यों तो शहर बाँकुड़ा में वह तिजारत के कुछ कार्यों से आया था परन्तु शहर में उसकी प्रतिष्ठा सुन उसकी भी इच्छा हुई गाना सुन लेने की। राहत ने

लाख समझाया पर नूरजहाँ ने उसे देखा भी नहीं। सेठ निराश हो चला गया।

मनुष्य अपनी रोज़ी पर पानी फिरते देख विह्वल हो उठता है। यही दशा हुई राहत की भी। उसका क्रोध चरम सीमा पर पहुँच गया। सहनशक्तियों ने सहने से इन्कार कर दिया। झट बाँस का एक डंडा ले राहत टूट पड़ा उस अबला पर। वह उस्ताद। उस्ताद!! चिल्ला कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। क्या ही भयावना दृश्य रहा होगा वह। जो नूरजहाँ एक खँच गड़ जाने से विकल हो अस्पताल दवा कराने जाती थी वही आज डंडों की मार सह रही है। यह है समय का फेर। मनुष्य नहीं प्रत्युत समय ही बलवान हुआ करता है—इसे सभी जानते हैं।

डंडों से जब उसकी पूर्णतया मरम्मत हो गई तो उसने नूरजहाँ से कहा, "यह तुम्हारे माँ-बाप का घर नहीं है कि बड़ी शान से रहती हो निकल जा अभी हमारे घर से। तुम्हारी जैसी कुटिलाओं का रखना श्रेयस्कर नहीं।

नूरजहाँ बिलख रही थी पर राहत के निष्ठुर हाथ उस समय भी उसके केशों को पकड़े हुए थे। वह उसे सीढ़ियों से नीचे खींचते लिये चला आ रहा था। नूरजहाँ का शरीर छिलगया था। उसके अंग प्रत्यंगों से खून बह रहा था। उसे लिये राहत अब सड़क पर आ पहुँचा। वह रो रही थी, वह डाँट रहा था। वह शरण चाहती थी पर वह निकाल रहा था। अभी भी ढकेलते हुए राहत कह रहा था "हट जा, आँखों से दूर जा।"

टप टप टप के साथ सहसा ताँगा रुक गया। ताँगे में दो व्यक्ति बैठे हुए थे एक पुरुष तथा एक महिला।

"आखिर बात क्या है कि तुम एक निर्दोष अबला पर अत्याचार कर रहे हो ऐ बुड्ढे!" गरजते हुए पूछा पुरुष ने जिसका नाम श्रीनरेन्द्र

बाबू था। आप स्थानीय देशोद्धारक समिति के सभापति तथा जजी कचहरी के सरकारी वकील थे।

"यह सचमुच अन्याय है एक अबला के ऊपर" कहा महिला ने। आप पीरगंज म्यूनिसिपल प्राइमरी पाठशाला की सहायक अध्यापिका थीं।

राहत उन दोनों की बातें सुनता रहा। क्रोध के मारे उसका खून खौल रहा था परन्तु बड़ों को सामने उपस्थित देख उसने किसी प्रकार शान्ति धारण की और उनके पुनः पूछने पर उसने कहना प्रारम्भ किया।

बहुत वर्ष पहले—

"सरकार! चमेली नाम की एक वेश्या मेरे साथ रहती थी। हम दोनों प्रति दिन सुबह तथा शाम इस नगर के पूर्व भाग में स्थित पोखरे पर आमोद-प्रमोद के लिये जाया करते थे। एक दिन मैंने इस अभागिन को मस्जिद में रोते हुए पाया। इसके पालन-पोषण के निमित्त चमेली तथा हम इसे यहाँ ले आये। इसे पढ़ाया लिखाया, इसके लिए सैकड़ों रुपये खर्च किया, इसी दिन के लिये न? कि बुढ़ौती में एक दिन ऐसा समय आयेगा कि कमाने की शक्ति मुझमें न रह जायेगी तो यह स्वयं कमा मुझे खिलायेगी। पर आज यह मुझे ही पाठ पढ़ा रही है।"

अध्यापिका रो रही थी। नरेन्द्र की भी आँखों में आँसू आ गये थे पर धैर्य धारण कर उन्होंने पूछा, "कौन सा पाठ यह तुम्हें पढ़ा रही है?"

राहत ने पुनः कहा, "सरकार हमारा पेशा आप जानते ही हैं। उस पेशे से ही इसे घृणा है पता नहीं शायद गवर्नरी करेगी।"

"अवश्य गवर्नरी कर सकती है यदि तुम पढ़ा लिखा योग्य बना दिये होते"—अध्यापिका लतिका ने कहा। "हाँ, इतना अवश्य है कि तुम्हारा पेशा पतित है, अधम है, संसार से इसे उठ जाना चाहिये। तुम उसीके लिये किसीको बाध्य नहीं कर सकते। तुम किसी अबला

को अपनी अस्मतें तथा इज्जत बेचने के लिये विवश यदि करते हों तो लो यह...।"

नरेन्द्र बाबू ने सीटी बजाई, दो पुलिस तुरत आ राहत को गिरफ्तार कर लिये। लतिका एकटक देख रही थी नूरजहाँ को और नूरजहाँ देख रही थी उसे। लतिका तथा नूरजहाँ की मुखाकृति बिल्कुल मिलती-जुलती थी। नरेन्द्र भी समझ गया था कि यह हमारी ही पुत्री है।

"चलो ताँगे पर बैठो"—नरेन्द्र ने कहा नूरजहाँ तथा लतिका से।

तीनों बैठ गये। ताँगा चल पड़ा पर नूरजहाँ ने लतिका से कह ताँगा रुकवा दिया। और उसने प्रार्थना की कि राहत ने उसके साथ बड़ा ही उपकार किया है अतः वह छोड़ दिया जाय। ऐसा ही हुआ पुलिस चले गये।

ताँगा रुका, सभी घुसने लगे उसी मकान में जिसका नम्बर था C K— ११।१२४।

× × ×

बालकृष्ण जब नूरजहाँ के मकान पर पहुँचा तो उससे सब हाल राहत ने साफ़-साफ़ बतलाया। वह आश्चर्यान्वित रह गया। उसने नूरजहाँ को धन्यवाद दिया उसके चरित्र में इस प्रकार के सुधार के लिये।

"किसके साथ गई है"—बालकृष्ण ने पूछा। "कोर्ट इन्सपेक्टर साहिब के साथ"—उत्तर था।

"नरेन्द्र बाबू के साथ ?"

"जी हाँ।"

"बहुत ही अच्छा हुआ—"बालकृष्ण ने स्वगत ही कहा। अब उसका जीवन एक जीवन होगा। उसके हृदय के अन्दर प्रेम होगा, कपट और छल नहीं। देशोद्धारक समिति के सभापति नरेन्द्र! तुझे धन्यवाद है। तुम्हारे ही जैसे लोग देश की नैया पार लगा सकते हैं। पतित समाज को ऊँचा उठा सकते हैं।

[२९]

लतिका के यहाँ आज दो अतिथि थे। पता नहीं उनके लिये अतिथि शब्द उपयुक्त है या नहीं। वह उन सबके लिये नौकर से भोजन का प्रबन्ध करा रही थी। कुछ इधर-उधर का प्रबन्ध कर वह स्वयं आ कुर्सी पर बैठ गई। एक दूसरी कुर्सी पर बैठ नरेन्द्र बाबू कुछ मिसलें देख रहे थे। पास में बैठी हुई नूरजहाँ रो रही थी।

"नूरजहाँ!—" कहा लतिका ने।

उसने अपना मस्तक ऊपर उठाया।

"ये कुर्सी पर बैठे हुए तुम्हारे पिता हैं, इनके चरणों पर गिरो"—लतिका ने कहा।

बिना कुछ सोचे समझे नूरजहाँ ने ऐसा ही कर दिया। नरेन्द्र बाबू ने आशीर्वाद दिया, "सौभाग्यवती बनो बेटी।" पुनः उन्होंने कहा अपनी माता से भी आशीर्वाद लो न। नूरजहाँ आगे बढ़ी अपनी माँ से मिलने के लिये। तुरत उसकी माँ ने उसे गले लगा रोना प्रारंभ किया।

"ये हँसने का अवसर है लतिका! रोने का नहीं, तुम इस शुभ-अवसर पर यह क्या कर रही हो। छोड़ो नूरजहाँ! दूर रहो। अपने विषय में सम्पूर्ण बातें जान लो, यह जानने का समय है, हँस लो, मनाने का समय है"—श्रीनरेन्द्र बाबू ने कहा।

नूरजहाँ ने रोते-रोते कहा, "बातें मुझे स्वप्नवत् जान पड़ रही हैं। पता नहीं चलता माता-पिता के रहते मैं उस पतित व्यक्ति के पास किस प्रकार पहुँच गई।"

लतिका रो पड़ी और उसने कहा, "बेटी! कहानी बड़ी ही लम्बी-चौड़ी है परन्तु तुम्हें समझाने के लिये कह रही हूँ सुनो।"

बहुत दिन व्यतीत हुए—

हम दोनों एक ही साथ पढ़ते थे। कक्षा चार की पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् मेरा तथा इनका ( नरेन्द्र बाबू की ओर इशारा करती हुई ) संग छूट गया। माता-पिता ने मेरा विवाह किया पर वह क्या था, कैसा था, यह मैं कुछ भी नहीं जानती। सभी सो रहे थे—मैं विधवा हो गई। पर मुझे क्या ज्ञान ?

दस-ग्यारह वर्ष पश्चात् आप महानुभाव बी० ए० पास कर घर लौटे। इनसे मेरा सम्बन्ध····

तुम्हारी नींव पड़ गई बेटी ! समझ लो, आप तो फिर लखनऊ विश्वविद्यालय में पढ़ने चले गये परन्तु जो मुझपर बीती उसका वर्णन शायद नहीं हो सकता। मैंने तुम्हें प्रसव किया। प्रसवकाल के समय एक डाक्टर महोदया ने मेरी पूर्ण सहायता की जिनसे तुम्हारा परिचय कराऊँगी।

बेटी उस समय मैं असहाय थी, मैंने तुम्हारे साथ पाप किया। तुझे नगर के पूर्व भाग में स्थित उसी पोखरे पर छोड़ मैं एक शिलापट्ट पर बैठ गई यह देखने के लिये कि कौन हमारी पुत्री को परवरिश के लिये ले जाता है। तुम्हें राहत ले गया। इतना किस्सा तो मैं जानती हूँ आगे का अब तुम बतलाओ जिससे तुम्हारे पिता जी पूर्ण परिचित हो जाँय।

"अपने होश के पहले की बात तो मैं नहीं जानती माँ ! पर उसके बाद का सुनलो फिर भी सुनाने की इच्छा नहीं करती क्योंकि व्यर्थ में सबको दुःख होगा"—नूरजहाँ ने कहा।

"नहीं, नहीं, सुनाओ बेटी !"—रोते हुए नरेन्द्र बाबू ने कहा।

"पिताजी ! राहत ने मुझे पाठशाला भेज दिया पढ़ने के लिये। मैं कुछ पढ़ लिख गई। तत्पश्चात् नृत्य तथा संगीत कला की शिक्षा मुझे घर पर ही मिली।

सोलह की अवस्था पर आते आते शहर ने मेरे नाकों दम कर कर दिया। राहत की चल पड़ी। उसकी जेब खूब गर्म हुई पर मेरी अस्मतें लुटी गईं, मेरी इज्जत चाँदी के ठीकरों से आँकी गई। कुछ समय पश्चात् बालकृष्ण नामक एक युवक से मेरा संग हुआ। है तो वह बड़ा पक्का आवारा पिताजी! पर वेश्या रूपी दीपक पर जलने वाला वह फतिंगा नहीं। उसी से मुझे अपने जीवन में बहुत कुछ शिक्षायें मिलीं।

मुझे वेश्या कार्य से घृणा हुई। मैंने प्रतिज्ञा की इस कार्य को न करने की। अब तक के जीवन में मुझे दो दिन खूब दुर्दशायें सहनी पड़ीं और सजा देने वाले को आप देख ही चुके हैं। अंत में उसने मुझे घर से निकाल दिया। मैं सड़क पर खड़ी रो रही थी—कि आप···" कहा नूरजहाँ ने।

सभी चुप हुए। उनकी प्रसन्नता का वर्णन नहीं हो सकता। तुम्हारा नाम अब मैं कान्ति रख रहा हूँ। स्मरण रखना! भुला दो 'नूरजहाँ' को।

[३०]

लाड़ली की आँखों से आँसू बरस रहे थे। उसने अब यह अनुभव कर लिया था कि उसका सम्बन्ध शहर के एक पक्के आवारा से हुआ, जिसे हर बात का घमंड है। वह स्त्रियों को एक आमोद-प्रमोद का साधन-मात्र समझता है। उन्हें ठुकरा देना उसके लिये एक सहज सी बात है। क्योंकि उसे उनकी चिंता ही नहीं। उसके पास धन है, वह समझता है कि चाँदी के टीकरों के आगे कौन ऐसी वस्तु है जो न झुक जाय। पर उसे क्या पता कि बहुत सी स्त्रियाँ भी प्रेम की पुजारिन होती हैं।

वह उपर्युक्त विचारों में मग्न थी। उसका शरीर जल रहा था। उसे खाना पीना कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। ठीक ही है बिरह की ज्वाला सबसे अधिक प्रखर होती है। इस ज्वाला से संतप्त प्राणी न तो जीता ही है और न तो मरता ही है। बल्कि यों कहा जाय कि जी जी कर मरता तथा मर मर कर जीता है।

शरद्कालीन चंद्रमा शीतल कहा जाता है, मदन पुष्प-बाण-धारी के नाम से विख्यात है परन्तु विरही जनों के लिये चन्द्रमा की वही किरणें प्रलयंकर ग्रीष्म-कालीन भानु की प्रखर किरणों के समान तथा मदन के वही पुष्प बाण वज्र के समान प्रहार करते हैं!

विरह का ज्वर भी बड़ा ही भयानक होता है जिसे यह ज्वर पकड़ लिया उसकी दवा ही नहीं। वैद्यों का अवतार रोगों की चिकित्सा करने के लिये है, भला वे विचारे इश्क-रोग की क्या दवा कर सकते हैं?

इसी इश्क रोग से बेचारी लाड़ली आक्रांत थी। उसके जीवन में सबसे प्यारी वस्तु उसे भ्रातृ-प्रेम मिला था। वह गिरिवर को सबसे

अधिक प्यारी थी और गिरिवर भी था सबसे अधिक प्यारा उसके लिये। आर्थिक परिस्थितियों से तंग आ गिरिवर नौकरी करने गया था। उसके लिये लीला की भी दशा सोचनीय थी। लाड़ली कभी भी नहीं चाहती थी कि उसका भाई उसे छोड़ चाँदी के दो टीकरों के लिये परदेश की रोटी खाय। परन्तु अपनी बुढ़ी माँ के समझाने बुझाने से तंग आ उसने नौकरी करना प्रारम्भ किया था।

अभी उसे गये थोड़े ही दिन हुए थे। समाचार भी प्राप्त हुआ था कि वह मजे में हैं परन्तु प्रियजनों के प्रति सदैव अनिष्ट की चितायें बनी ही रहती हैं अतः वह सदैव व्यग्र रहती थी। उसे थी एक ओर अपनी चिन्ता, दूसरे भाई की, तीसरी प्राणवल्लभ की। चिन्ता का अनन्त-सागर उसके सम्मुख लहरा रहा था। तो भला दुःखी क्यों न होए। चिन्ता उसे जीते-जी जला रही थी।

लाड़ली आक्रांत थी विरह ज्वाला से। जल रही थी चिन्ताकी लपटों से। उसके दिन दुःखमय थे।

डाँकिये को देख प्रायः सबको प्रसन्नता हो जाया करती है। शायद कुछ ही काष्ठ हृदय ऐसे होंगे जो उसे देख ज्यों के त्यों बैठे रहें। इन लोगों में हम उनकी गणना नहीं करते जिनका पत्र व्यवहारादि से कोई सम्बन्ध ही नहीं।

लाड़ली के भी चिन्ता-मय मुखमंडल पर प्रसन्नता की कुछ झलक दिखलाई पड़ी। उसके हाथ डाँकिये ने एक पत्र दिया। पत्र पाते ही लाड़ली ने उसे मटक-मटककर पढ़ना प्रारम्भ किया। मटकने का कारण यह था उसने केवल दर्जा दो तक ही शिक्षा प्राप्त की थी। पढ़ते समय लाड़ली की आवाज़ बुलन्द थी ताकि उसकी माँ भी पत्र को सुन सके।

लिखा थाः—

लाड़ली !

तुम्हें गिरिवर की परिस्थितियों पर ध्यान दिलाते मुझे महान् व्यथा तथा खेद है। परन्तु तुम भी मुझे बाद में यह कहकर उपालम्भ दे सकती हो "कि तुमने मुझे सूचित भी न किया"—अतः पत्र लिख रहा हूँ।

चौकीदारी की नौकरी पर तैनात हो गिरिवर मेरे साथ ही डिमडिमा छावनी पर रहने लगा। हम दोनों ने जी जान लगा अपना कार्य प्रारम्भ किया। और खुश-खुशी रहने लगे! एक दिन तहसिलदार के बक्स से ५,०००) रुपया निकाल लिया गया। तहसिलदार ने इसकी रिपोर्ट मालिक को दी। मालिक चौक के दारोगा को साथ ले घटना-स्थल पर पहुँचे। वहाँ हम दोनों की तलाशी हुई। मेरी जेब में तो कुछ नहीं था परन्तु गिरिवर की जेब से एक १००० रुपये का नोट निकला। उसे अपने हाथ में ले दारोगा ने कहा; "साले! चार नोट अभी और देने होंगे।"

"मैंने रुपये नहीं लिये हैं कृपया दारोगाजी आप गाली न दीजियें"—गिरिवरने कहा। "अच्छा रुपये दे दो"—दारोगा ने आग्रह किया। "जी नहीं, रुपये मैंने लिये ही नहीं"—उत्तर था।

बिना कुछ सोचे समझे दारोगा ने गिरिवर को खूब पीटा और वह हवालात में बन्द है, जमानत पर छुड़ाया जा सकता।"

और क्या लिखूँ।

तुम्हारा
कुटिल।"

# [ ३१ ]

पत्र को पढ़कर दोनों ने खूब रोना रोया। तत्पश्चात् साधुवेश बना, लाड़ली चल पड़ी शहर की ओर। सर्व प्रथम वह चौक के दारोगा के यहाँ पहुँची और उसने कहा, "दारोगा जी ! श्रीकृष्ण बाबू की चोरी के विषय में आपने गिरिवर नामक व्यक्ति को कैद किया है परन्तु वह निर्दोष है उसे छोड़ दीजिये।

"तो दोषी कौन है साधुजी महाराज ! पूछा उन्होंने।" ( लाड़ली पुरुष वेश में है, याद रहे )

"यह मेरा कर्त्तव्य नहीं है कि मैं बतलाऊँ।"

"तो मैं किसे दण्ड दूँ।"

"जिसे ही चाहिये उसी को दीजिये।"

"वाह ! यह भी कोई नियम है।"

"तो क्या यह भी कोई नियम है कि यदि आपके कुछ नोट गायब हो जाँय और किसी व्यक्ति के यहाँ अगर एक नोट मिले तो वह आप ही का हो सकता है ?"

"अंदाज भी तो कुछ लगाया ही जाता है।"

"पर ऐसा नहीं कि निर्दोष पीस दिया जाय।"

"अच्छा साधु जी ! आपके कथनानुसार मैं गिरिवर को छोड़ सकता हूँ परन्तु यदि आप चोर का भी पता लगा दें तो–" कहा दारोगाजी ने।

"मैं चोर का पता सहर्ष लगा सकता हूँ पर एक बात है। आपने २००० रुपये लिये कुछ भी न करने का परन्तु मैं तो करूँगा, चोर का पता लगा दूँगा आपके डंडों के बल से रुपया दिला दूँगा तो बोलिये

मुझे क्या मिलेगा। अच्छा हाँ एक बात और सुनिये—यह रुपया मैं अपने लिये नहीं माँगता हूँ, बल्कि आपके सामने ही किसी गरीब को दे दूँगा।"

"अच्छा आपको ३८०० मिलेंगे आप पता लगायें—" दारोगा जी ने कहा।

"चोरी से जितने लोगों का सम्बन्ध है सबको बुलवाइये।"

"बहुत अच्छा।"

"साधु एक कमरे में चला गया और वहाँ जा तैयारी करने लगा।

सभी धीरे-धीरे आने लगे। एक घंटे बाद काफ़ी भीड़ हो गई। शोर हुआ बड़े ही भारी ज्योतिषी आये हैं।

साधु ने बाहर खड़ा हो कहा, "श्री कृष्णबाबू की चोरी हुई है ५००० रुपये की इसका पता अभी मैं लगा रहा हूँ।

"देखिये सबको बारी बारी इस कमरे में जाना होगा और कहना होगा कि यदि मैंने चोरी की है तो ऐ लकड़ी! मुझे पकड़ लो—" साधु ने कहा।

एक वेदी बनी हुई थी। उस पर चारो ओर दीपक जल रहे थे। बीच में एक लकड़ी गड़ी थी उसी को पकड़ना था। कमरे में घुसने से पहले ही किवाड़ पूर्णतया बंद कर देना था।

कार्य शुरु हुआ। सर्व प्रथम तहसीलदार साहब घुसे। उन्होंने लकड़ी पकड़ उक्त वाक्य कहा। चले आये। उन्हें साधु एक दूसरे कमरे में ले गया। दारोगा जी भी वहीं थे। साधु ने तहसिलदार का दारोगा से हाथ सूघने को कहा।

दारोगा ने सूँघते हुए कहा, "बड़ी अच्छी हींग मँहक रही है। साधु जी।"

"जी हाँ यही बात है, देखिये निर्जीव लकड़ी में पकड़ने की शक्ति

कहाँ ? परन्तु इस डर से कि लकड़ी कहीं पकड़ ले जो चोर होगा वह कमरे में जा लकड़ी नहीं पकड़ेगा। उसे इस बात का डर तो है नहीं कि मुझे लकड़ी न पकड़ते कोई देख रहा है क्योंकि किवाड़ बन्द रहेगा। बस आपको अब ही देखना है कि कौन लकड़ी नहीं पकड़ता है। और यह मालूम होगा महँक से—" साधु ने कहा। दारोगा तथा तहसिलदार साहब हँस पड़े।

तत्पश्चात् पाँच छः आदमी कमरे के भीतर जा किवाड़ बन्द कर, लकड़ी पकड़ते हुए उक्त वाक्य कहा। सभी उसी कमरे में गये जहाँ दारोगा जी थे। दारोगा जी ने सबका हाथ सूँघा और उन्हें निर्दोष कर दिया। उन्हीं में गिरिवर भी था।

अब कुटिल की बारी आई। उसका कलेजा पहले से ही काँप रहा था वह जानता था कि ज्योंही लकड़ी छूआ कि वह उसे अवश्य पकड़ लेगी। अतः कमरे में जा उसने किवाड़ बन्द किये और चुपचाप वहीं थोड़ी देर खड़ा रह लौट आया। लौटने पर साधु ने उसे उसी कमरे में पहुँचाया। दारोगा ने हाथ सूँघ तहसिलदार को भी सुँघाया।

"जी हाँ—" उत्तर दिया तहसिलदार ने।

श्री दारोगा जी के आदेशानुसार उक्त कार्य बन्द किया गया। क्योंकि चोर का पता लग गया था।

"पाँच हजार रुपये अभी लाकर दे दो कुटिल।" दारोगा जी ने कहा।

"क्यों सरकार मैं ही चोर हूँ!"

"और क्या झूठे ही कह रहा हूँ।"

"जी नहीं, मैंने रुपये नहीं लिये।"

अब क्या था। दारोगा जी के आदेशानुसार कुटिल पर मार पड़ने लगी। चार हण्टरों के बाद उसने कहा, "सरकार! रुपये नीम के पेड़ तले एक हण्डियाँ में गड़े हुए हैं।"

"कहाँ है वह नीम का पेड़—" कहते हुए दोनों ओर से दो-दो हण्टर और लगे :

"वहीं सरकार ! वहीं छावनी पर।"

"अच्छा छोड़ दो—" दारोगा जी ने कहा।

श्रीकृष्ण बाबू, बालकृष्ण, तहसिलदार साहब, साधु जी, कुटिल एवं दारोगा जी मोटर पर सवार हो छावनी की ओर चल पड़े।

वहाँ पहुंचते ही कुटिल ने रुपया खोद कर निकाला और समर्पित किया दारोगा जी को। गिरिवर का हजार रुपया वाला नोट उसे लौटा दिया गया।

बालकृष्ण ने कहा "जरा लाओ तुम्हारा नोट देखें।"

देखते ही देखते वह चकित रह गया। और तुरत उसने पूछा, "यह नोट तुम्हें कैसे मिला ?"

[बालकृष्ण ने नोट पर अपना दस्तखत बना, तारीख लिखता हुआ उसे लाड़ली को समर्पित किया था। आश्चर्य उसे इसलिये हुआ कि लाड़ली का रुपया इसे कैसे मिला ]

"यह रुपया मुझे मेरी बहन लाड़ली ने दिया था रखने के लिये पर अभाग्यवश सरकार ! मैं इसे अपने पास ही लेते आया। जिसके कारण मुझपर भी इतनी मार पड़ी। कुटिल ने अपनी कुटिलता से मेरी दुर्दशा कराई। खैर !"

"तुम्हारी बहन का नाम लाड़ली है।"

"जी हाँ।"

कुटिल गिरिवर तथा श्रीकृष्ण बाबू के पैरों पर गिर पड़ा। "मेरे सरकार ! इस बार मुझे रिहा कर दें फिर ऐसी गलती कभी भी न होगी—" कहा उसने श्रीकृष्ण बाबू से।

"मित्र ! मेरे अपराधों को भूल जाओ, अब ऐसी गलती कभी न करूँगा क्षमा कर दो—" कहा उसने गिरिवर से।

"मैंने तेरे अपराधों को क्षमा कर दिया कुटिल !"—कहते हुए उसने उसे गले मिलाया।

गिरिवर के बहुत कुछ कहने-सुनने पर उसने सरकार से भी क्षमा प्राप्त की।

३००० साधु को मिले, साधु चलता बना। चलते समय उसने कहा "लो गिरिवर यह इनाम लो—" और सब रुपया उसे ही दे दिया।

पुनः साधु ने कहा—

"दारोगा जी।"

सर्वप्रथम किसी मामले का पूर्ण पता लगा लीजिये, तब सजा इत्यादि दीजिये।

"बहुत अच्छा महाराज !" कहते हुए दारोगा ने गिरिवर को अपने गले से मिलाया और कहा "आशा है गिरिवर भाई ! मुझे तुम क्षमा कर दिये होंगे।"

"दारोगा जी ! मैं एक नादान व्यक्ति आप जैसों को क्षमा ही कैसे कर सकता हूँ। हाँ मुझे इतना ही दुःख है कि निर्दोष रहते हुये भी मुझपर मार पड़ी। खैर अब तो आप अच्छी तरह जान गये कि मालिक के प्रति मेरा व्यवहार सच्चा था या झूठा। निर्दोष साबित होते ही मेरे शरीर की पीड़ा काफूर हो गई। बस यही बड़ी बात है। आप किञ्चित पश्चात्ताप न करें।"

पुनः साधु ने कहाः—

श्रीकृष्ण बाबू !

नौकरों से कभी-कभी ग़लतियाँ भी हो जाया करती हैं उनके लिये अधिक अप्रसन्न हो जाना उचित नहीं। दारोगा जी गिरिवर को पीट रहे थे। उसी गिरिवर ने एक दिन आपका जीवन बचाया था परन्तु

आप केवल ५००० रुपये के लिये उसे मर मिटाने को तैनात हो गये। हालाँ कि मैं देखता हूँ आपका रुपया ग़ायब का ग़ायब ही रहा। ३००० मुझे मिला और २००० दारोग़ा जी को। यह ठीक नहीं।"

"जी हाँ ग़लती हुई"—कहा उन्होंने साधु से और आगे बढ़ते हुए गिरिवर को हाथों से पकड़ उन्होंने कहा।

"गिरिवर मेरे अपराधों को भूल गये न ?"

"और का सरकार।"—हँसते हुए उत्तर दिया गिरिवर ने!

# [३२]

"एक पंथ दो काज" होता देख बालकृष्ण को महती प्रसन्नता हुई। उसने गिरिवर को एक अनाथ निर्धन समझ नौकरी दिया था पर बाद में वह उसकी प्राणप्यारी का भाई निकला।

साधुवेशधारिणी लाड़ली देख रही थी कि लाड़ली शब्द के लिये बालकृष्ण कितना लालायित है। उसने यह भी देखा कि जिस प्रकार के रोग से वह पीड़ित है वही रोग उसे भी संतप्त कर रहा है। तदनन्तर उसकी मानसिक वेदना कुछ कम हुई।

बालकृष्ण लाड़ली के लिये विकल था। उसको खाना पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। जब उसने अनुभव किया कि परिस्थिति विकट हो जायेगी तो वह मिलने के लिये लाड़ली के यहाँ जाने को उद्यत हुआ। उसने बरना से कहा "देख बरना! आज मैं लाड़ली के गाँव जा रहा हूँ यदि पिता जी आयें और पूछें तो परिस्थिति सम्भाल लेना, अच्छा।"

"बहुत अच्छा सरकार! आप जाँय। मैं सब काम बना लूँगा। घबड़ाने की आवश्यकता नहीं"—बरना ने कहा। घाट पर आ, नाव चलाये बालकृष्ण चला जा रहा था थोड़ी ही देर में सुखपुरा गाँव के सामने वह आकर लग गई।

उसने देखा घाट के ही एक शिलापट्ट पर एक रमणी बैठ विचारों के तरंग में गोते लगा रही थी। उसकी मुखाकृति से महान् विषाद की आभा झलक रही थी। बालकृष्ण ने मारे प्रसन्नता के कदम आगे बढ़ाया। और पीछे से ही उसने रमणी की आँखों को मूँद दिया।

"आज मुझे मजाक अच्छा नहीं लगता छोड़ दो बीना!" कहा रमणी ने।

बालकृष्ण तुरत सहम गया और साथ ही वह भी सहम गई। "मैंने आपको लाड़ली समझ ऐसा व्यवहार किया कृपया आप क्षमा करेंगी"—बालकृष्ण ने कहा।

"खैर कोई बात नही, मैं लाड़ली की सखी हूँ, पर आप तो यह बतलायें कि लाड़ली तथा आपसे कैसे परिचय है"—कहा रमणी ने। वह थी लीला।

"परिचय कैसे है या हुआ इसकी तो कहानी बड़ी लम्बी चौड़ी है परन्तु इतना अवश्य है कि शहर में जाने से उसका तथा मेरा परिचय हुआ वही परिचय घनिष्ठता के रूपमें परिणत हो गया। और आज उसके लिये मेरी क्या दशा है यह प्रत्यक्ष देख लीजिये बालकृष्ण ने कहा।

"आपका नाम क्या है ?" बालकृष्ण ने पूछा।

"लीला।"

पुनः लीला ने कहा, "यदि आपको भी अपना बतलाने में हर्ज न हो तो बतलाइये।"

"मेरा नाम बालकृष्ण है"—उत्तर था।"

"आपके शहर में एक श्रीकृष्ण बाबू हैं क्या आप उन्हें जानते है।"

"अवश्य। मैं उन्हीं का लड़का ही हूँ"—उत्तर दिया बालकृष्ण ने।

"अच्छा, लाड़ली का भाई गिरिवर आपके ही यहाँ नौकरी करता है। रुपये की चोरी में वह आज तक गिरफ्तार है। आज लाड़ली साधु वेश में शहर गई है। मिसमरेज़िम कर चोर का पता लगाने। उसके बारे में क्या हुआ आप जानते हैं ?" लीला ने पूछा।

"गिरिवर निर्दोष था वह छोड़ दिया गया। पर वास्तविक चोर कुटिल निकला। उसने सभी रुपया दे भी दिया और सबके पैरों पड़ा। गिरिवर के ही कहने-सुनने पर किसी प्रकार कुटिल रख लिया गया नहीं तो उसे नौकरी से बरखास्त कर दिया जाता। साधु ने ही चोर का पता

लगाया। उन्हें ३००० पुरस्कार भी मिला। सब रुपये उन्होंने गिरिवर को ही दे दिया बालकृष्ण ने कहा।

"तो क्या साधुवेश में लाड़ली ही गई थी"—साश्चर्य पूछा बालकृष्ण ने।

"जी हाँ"—उत्तर था।

बालकृष्ण ने पुनः कहा, "गिरिवर तथा लाड़ली अब आ गये होंगे, चलिये चला जाय।"

"चलिये न"—लीला ने कहा।

वे दोनों चल पड़े। लीला तो अपने घर चली गई, परन्तु बालकृष्ण पहुँचा लाड़ली के दरवाजे पर। उधर से लाड़ली घड़ा लिये चली आ रही थी उसका कार्य था नदी जाकर पानी लाना। परन्तु उसने सहसा बालकृष्ण को देखा। वह लौट गई और भीतर जा उसने अपने भाई गिरिवर से कहा, भय्या, हमारे मालिक आये हैं और अभी-अभी मैंने जाना है कि वही तुम्हारे भी मालिक हैं। इसलिये जाओ द्वार पर। बालकृष्ण के स्वागतार्थ वह दौड़ता हुआ भीतर से आया। खड़ाऊँ ला वह पैर धोना प्रारम्भ करना ही चाहता था कि बालकृष्ण ने उसे ऐसा करने से रोक दिया और तुरत कहा भी "गिरिवर! मैं आज जान सका हूँ कि तुम हमारे साले हो। तुम पैर न धो सकोगे।"

गिरिवर दौड़ता हुआ घर में गया और पूछा, "क्यों लाड़ली! बालकृष्ण को तूने बर चुन लिया है?"

लाड़ली चुप रही।

"बोलो, यदि ऐसा हो भी गया होगा तो अहोभाग्य! पर बात कहाँ तक सत्य है यह जानना चाहता हूँ" पुनः गिरिवर ने कहा।

"अक्षरशः सत्य"—संक्षिप्त उत्तर था।

गिरिवर पुनः दरवाजे पर आया। साथ में वह एक लोटा दूध चीनी

मिलाया हुआ तथा एक गिलास भी लेता आया। बालकृष्ण ने दूध पीया। उसने मन ही मन कहा, "शराब में यह आनन्द कहाँ ? इसी के चलते तो मैंने शराब पीना छोड़ दिया।"

भोजनोपरांत गिरिवर चल पड़ा लीला के घर की ओर। एवं बालकृष्ण लाड़ली की चारपाई पर जा बैठ गया। थोड़ी ही देर में वह भी वहाँ आ गई।

"तुम मुझे अवश्य क्षमा कर दोगी लाड़ली!" कहा उसने।

"मैने तो चोर का पता लगाते ही समय तुम्हें क्षमा कर दिया कुँवर"—हँसते हुए उत्तर दिया लाड़ली ने।

"वाहरे साधु महाराज" कहते हुए बालकृष्ण ने लाड़ली को अपनी चारपाई पर बिठा लिया। दोनों तृषित हृदय मिले, पर लाड़ली को आश्चर्य हुआ कि यह बात ये कैसे जान गये। पूछने पर बालकृष्ण ने लीला की कही हुई बात दुहरा दी।

दोनों प्रसन्न थे। रात्रि बीत रही थी।

× × ×

गिरिवर तथा लीला का भी हर्ष का ठिकाना न था, दोनों प्रसन्नता-सागर में डूब-उतरा रहे थे। लीला ने गिरिवर को लाड़ली की करामात बतलाया। गिरिवर चकित रह गया।

उसने कहा—"लाड़ली! तुम्हारी बुद्धिमानी को धन्यवाद है।"

आज गिरिवर—लीला मिलन भी खुलकर हुआ था। गिरिवर का झमेला ही अब संसार से चल बसा था। शांति दे भगवन् बीना की निर्दोष निर्मल आत्मा को।

# [३३]

श्रीनरेन्द्रबाबू अपनी पुत्री कान्ति को लिये चले जा रहे थे। आप कान्ति से पूर्णतया परिचित ही हैं। वही है यह जो आज तक नूरजहाँ के नाम से विख्यात थी। उनके हृदय में उल्लास था। भाँति-भाँति की भावनायें उनके हृदय में उठतीं तथा विलीन होती थीं। चलते-चलते वे पहुँच गये सेठ श्रीकृष्णबाबू के बंगले पर।

सेठजी ने देखते ही दौड़ हाथ मिलाया और कहा, "आज अपने को मैं बड़ा ही भाग्यशाली समझता हूँ कि कोर्ट इन्सपेक्टर साहिब! मेरे दरवाजे पर आये हैं।

"परन्तु मैं तो अपने को तब भाग्यशाली समझूँगा जब कि आप मुझे ठुकरायें नहीं"—नरेन्द्र ने कहा।

"आप यह क्या सोच रहे हैं नरेन्द्रबाबू! क्या आपको ठुकराने की शक्ति मेरे अन्दर है?"

इसी बीच नौकर ने गर्म दूध लाकर रख दिया, "आप दूध पीयें"—श्रीकृष्णजी ने कहा।

"बहुत अच्छा"—कह उन्होंने दूध पी लिया। कांति सर नीचे किये बैठी थी। उसकी आँखों में आँसू थे। "आपका शुभ परिचय"—कहते हुए श्रीकृष्णबाबू ने कांति की ओर संकेत किया।"

"यह मेरी लड़की है कांति, आपकी पूर्वपरिचित भी है पर इस नाम से नहीं बल्कि "नूरजहाँ" नाम से। इसका पहला सम्बन्ध राहत के यहाँ आप ही से हुआ। इसने आपको वर चुन लिया है। यद्यपि आज तक इसकी अस्मतें लूटी गई इज्जत पर पानी फेरा गया पर उसे यदि आप और हम न सँभालेंगे तो सँभालेगा कौन? समाज में तो

केवल पतित ही भरे हुए हैं, उन्हें क्या चिंता कि कौन कार्य करना चाहिये अथवा कौन नहीं"—कहा श्रीनरेन्द्रबाबू ने।

इतना कह नरेन्द्रबाबू एकटक सेठ की ओर देखने लगे। सेठ बड़े ही असमंजस में पड़ा। एक ओर तो उसे कोर्ट इन्सपेक्टर साहिब का खयाल था पर दूसरी ओर यह कि कांति ने आज तक वेश्या-कर्म किया है। परन्तु पुनः उसने सोचा, "वेश्या कर्म से क्या? भूत तो भूत है हमें वर्तमान की दशा पर विचार करना है—यह है कांति—स्थानीय कोर्ट इन्सपेक्टर साहब की एक मात्र पुत्री, इससे यदि विवाह होता है तो कम से कम दो कल्याण होंगे। पहला तो यह कि मैं समाज-सुधारक कहाऊँगा दूसरा यह कि मेरी प्रतिष्ठा किसी प्रकार कम न होकर बढ़ेगी ही। अतः उन्होंने उत्तर दिया, "यद्यपि विवाह करने में मेरा हृदय धड़क रहा है परन्तु फिर भी मैं सहर्ष तैयार···।"

नरेन्द्रबाबू श्रीकृष्ण से गले मिले। अधजल गगरी के समान उनके हृदय की प्रसन्नता छलकने लगी।

"आज आपने मेरा बहुत ही बड़ा उपकार किया, सेठजी!" श्रीनरेन्द्रबाबू ने कहा

"अरे भाई! उपकार इत्यादि कुछ नहीं। मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया।"

गले मिल नरेन्द्र तथा कांति रवाना हो गये।

× × ×

कांति कमरे से बाहर निकल अभी जा ही रही थी कि उधर से आ गया गिरिवर के साथ बालकृष्ण। उसने आश्चर्य से पूछा—

"तुम यहाँ कैसे नूरजहाँ?"

"बेटा तुम्हारा ही नाम बालकृष्ण है"—पूछा नरेन्द्रबाबू ने।

"जी हाँ, कहा उसने, और आपका शुभ परिचय?"

"मैं इसी नूरजहाँ का पिता हूँ, स्थानीय कोर्ट इन्सपेक्टर। परन्तु यह नूरजहाँ अब नूरजहाँ नहीं रही बल्कि 'शांति' हो गई है। और तुम्हारी माता के पद पर शीघ्रातिशीघ्र आने वाली है, हाँ तो मैं यह भी बतला देना चाहता हूँ कि मैं स्थानीय देशोद्धारक समिति का सभापति हूँ"—कहा नरेन्द्र ने।

"वही समिति न जिसका कार्यालय नाटकनगर में है"—बालकृष्ण ने पूछा।

"अच्छा जाओ" नरेन्द्र के ऐसा कहने पर बालकृष्ण प्रणाम नाना, प्रणाम माँ, कह चल पड़ा। उसे इन दोनों के अंतस्थल से आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

वह बहुत ही प्रसन्न था। उसी प्रसन्नता में मग्न हो गिरिवर के साथ चला आ रहा था। थोड़ी ही देर में वह अपने पिता के बँगले पर पहुँचा। सेठ भी दूध पी कुल्ला कर रहे थे। उनके लौटने पर इन दोनों ने पादस्पर्श किया। आशीर्वचन ले पिता के आदेशानुसार बालकृष्ण बैठ गया तथा गिरिवर भी यथास्थान बैठ गया।

"चोरी का पता लगाने कल जो साधु आये थे, उन्हें आप जानते हैं पिताजी?"

"नहीं बेटा! पूर्णपरिचय तो नहीं जानता पर इतना अवश्य जानता हूँ कि वे एक साधु तथा ज्योतिषी हैं!"

"पिताजी! मेरी इच्छा है उसी से शादी करने की। आशा है आप इसे सहर्ष स्वीकार करेंगे जैसा कि आपने मुझे आश्वासन भी दिया था।"

"तो क्या बेटा! पुरुष से ही शादी करोगे"—साश्चर्य पूछा सेठजी ने।

"पिताजी! वह पुरुष नहीं बल्कि गिरिवर की बहन लाड़ली है"—बालकृष्ण ने उत्तर दिया।

श्रीकृष्ण ने आश्चर्य भरी दृष्टि से गिरिवर की ओर देख, मानों उनकी आँखें पूछ रही हों कि क्यों गिरिवर वह सचमुच तुम्हारी बहन है ?

गिरिवर ने उनके देखते ही कहा "सरकार ! वह मेरी बहन ही है।"

सेठ ने विचार किया, "बालकृष्ण का विवाह एक नौकर की बहन से हो रहा है, फिर भी इससे क्या मतलब ? जब दो हृदय आपस में मिल गये तो मैं नहीं चाहता कि उनके बीच में सामाजिक बन्धनों का झमेला खड़ा कर दिया जाय। उसने पूछा, "क्यों बालकृष्ण ! दोनों एक दूसरे को चाहते हैं न ?"

"जी हाँ।"

पर लाड़ली से भी पूछ लेना हमारा कर्त्तव्य है—वे आश्चर्यान्वित से रह गये जब कि दूसरे क्षण उनकी आँखों के सामने लाड़ली विद्यमान थी।

"क्यों बच्ची लाड़ली ! तुम बालकृष्ण से विवाह करना चाहती हो ?"

लाड़ली चुप रही। "मौनम् स्वीकार लक्षणम्" हुआ ही करता है। सेठजी ने सहर्ष सब को विदा करते हुए कहा, "मेरी भी परम अभिलाषा है कि लाड़ली को वधू रूप में शीघ्रातिशीघ्र देखूँ। सभी प्रसन्नता से पादस्पर्श करते हुए चल दिये।

× × ×

गिरिवर ने कहा, "कुँवर ! मेरी भी इच्छा है कि मैं अपना विवाह लीला से करूँ। आज तक तो हमारा सम्बन्ध हो ही गया होता परन्तु माता-पिता रास्ते में रोड़े अँटका रहे थे।"

"लीला बड़ी ही भोली है"—बालकृष्ण ने कहा। "यह आपको कैसे मालूम कुँवर !" गिरिवर ने पूछा। "तुम्हारे यहाँ जाते समय नौका से ज्योंही उतर मैं किनारे आया वह शिलापट्ट पर बैठी-बैठी विचारों में मग्न थी।

मैंने उसे लाड़ली समझ बातें प्रारम्भ किया। परन्तु सहम गया उस समय जब कि उसने अपने को लाड़ली की सखी बतलाया। तुम उस समय गिरफ्तार थे। मेरा भी परिचय जान लेने पर उसने सबसे पहले तेरे ही विषय में पूछा था। संदेश पा उसका हृदय सहसा प्रसन्न हो उठा। उसके मुखमण्डल पर प्रसन्नता की आभा झलक उठी। उस समय, गिरिवर! मैं स्वयं दुःखी था अतः उसकी प्रसन्नता आँक न सका तथा उस प्रसन्नता का कारण भी न पूछा परन्तु अब मैं उस कारण को यहाँ स्वयं ही समझ रहा हूँ।"

तीनों प्रवेश कर गये बालकृष्ण के कमरे में। लाड़ली ने देखा शराब की आलमारियाँ खुली हुई हैं उनमें कुछ फोटो लगे हुए हैं—वह प्रसन्न हुई इसलिये कि बालकृष्ण ने शराब पीना छोड़ दिया है।

नौकर ने ट्रे ला टेबुल पर रख दिया—थोड़ी देर बाद ताँगे में सवार हो वे दोनों चल दिये अपने गाँव की ओर। दोनों के हृदय में महती प्रसन्नता थी।

"आज घर चल लीला को भाभी कहती हुई अपने घर बुला लाऊँगी भैय्या, "कहा लाड़ली ने।

"इसकी क्या आवश्यकता, अब तो उसे आना ही होगा। झमेला कब का समाप्त ही हो चुका है—तुम जानती ही हो"—गिरिवर ने कहते हुए अपनी बहन को गले से लगा लिया।

# [ ३४ ]

लतिका और नरेन्द्र का विवाह सम्पन्न हुआ। उन्हें कैसी प्रसन्नता हुई यह एक अनुभव की बात है। तत्पश्चात् नरेन्द्रबाबू ने कांति का विवाह सेठ श्रीकृष्णजी के साथ बड़ी धूम-धाम से किया।

इसी बीच गिरिवर का विवाह लीला से हुआ। निरंतर विरह की ज्वाला में जलता हुआ उनका संतप्त हृदय शांत हुआ उन्हें प्रसन्नता मिली। जिनका वर्णन लेखन शक्ति से परे है।

उपर्युक्त सभी व्यक्तियों को सुख तथा शांति मिली।

पर···आशा में निराशा की झलक भी आ जाती है। लाड़ली के साथ विवाह कर बालकृष्ण कितना प्रसन्न हुआ होता, नहीं कहा जा सकता। परन्तु उस त्रिलोकीनाथ को अभी यह मंजूर ही न था।

बालकृष्ण शैय्या पर पड़ा-पड़ा कराह रहा था। उसके शरीर में दर्द तथा मानसिक जगत में वेदना थी। डाक्टर समूह अपना कार्य करने में व्यस्त था।

सर्व-प्रसिद्ध डाक्टर रामदहिन राय ने श्रीकृष्णबाबू से कहा, "बालकृष्ण का जीवित रहना अब कठिन है क्योंकि इनके शरीर में खून ही नहीं रह गया। परन्तु आपके यहाँ यदि कोई ऐसा साहसी व्यक्ति हो जो अपने शरीर से चौथाई पौंड खून दे सके तो आशा है "ब्लड-इन्जेक्शन" से बालकृष्ण जीवित रह सके अन्यथा अब कोई उपाय नहीं।

श्रीकृष्ण बाबू ने चारों ओर देखा सरसरी निगाह से। पुनः वे बारी-बारी से सबको देखने लगे। पर कोई तैयार न हो सका। ठीक ही है असमय पर कौन किसका मित्र होता है—कमल को सूर्य बहुत प्यारा है परन्तु सरोवर के जल को घटते देख स्वयं सूर्य्य ही कमल को नष्ट कर

देता है। बीसों छावनियों के ज़िलेदार, कितने ही तहसिलदार तथा सैकड़ों नौकर सर नीचे किये खड़े थे परन्तु उनमें से कोई भी उतना साहसी न हो सका।

"हाथ में रूई का छोटा सा बंडल लिये—डाक्टर साहब ने थोड़ी ही देर पहले माँगा था और इस समय चुप थे। गिरिवर आ पहुँचा और कहने लगा, "डाक्टर साहब! लीजिये यह।"

"अब इसकी ज़रूरत नहीं है, रख दो इसे"—श्रीरामदहिन राय जी ने कहा।

गिरिवर ने सरसरी निगाह से सबकी ओर देखा पुनः देखा उसने श्रीकृष्ण बाबू की ओर। वह जान गया, पहचान गया, शायद संदेह कर गया कि डाक्टर ने नकारात्मक उत्तर दे दिया है। श्रीकृष्ण बाबू की आँखों में करुणा थी।

"तो क्या, डाक्टर साहब! अब आप दवा नहीं करेंगे?" गिरिवर ने पूछा।

"भाई! उसी की तो प्रतीक्षा में खड़ा हूँ यदि दवा उपलब्ध हो सके तब न" उन्होंने कहा।

"किस वस्तु की प्रतीक्षा है डाक्टर साहब!" पूछा गिरिवर ने। डाक्टर साहब ने कहा, "भाई! इन्हें "ब्लडइंजेक्शन" देने के लिये मुझे चौथाई पौंड खून की आवश्यकता है, यही देख रहा हूँ कि इतने लोगों में से है कोई साहसी व्यक्ति जो खून दे सके।"

"तो क्या कोई भी बाहर नहीं आ सका?"

"नहीं" उत्तर था।

गिरिवर ने कहा, "रहीम की यह उक्ति क्या ही अच्छी है:—

सम्पति-सगे बनत बहुत बहुरीति।

रियासत से सैकड़ों रुपये माहवारी आमदनी करने वाले ये जिलेदार

खड़े हैं, नीचे सर किये बिना नज़राना के मालगुजारी न लेने वाले ये तहसिलदार हैं। कुटिल के समान स्वामी भक्त ये सैकड़ों नौकर है पर कोई भी ऐसा साहसी नहीं ?"

शान्ति ही चारों ओर। डाक्टर ने पहले ही बता दिया था कि श्रीकृष्ण बाबू तथा किसी भी स्त्री के खून का इंजेक्शन नहीं दिया जा सकता।

गिरिवर ने डाक्टर साहब के पास पहुँच कहा, "डाक्टर साहब! चौथाई पौंड में क्या रखा है जितना हमारे शरीर में रक्त है सब आप ले सकते हैं। उसी समय उसके मुँह से सहसा उच्चरित हुआ—

"ग़रीबों बेनवाओं का सहारा कौन बाकी है।
ग़र तू नहीं तो फिर हमारा कौन बाकी है।
समर्पित है सभी कुछ अब तेरे एहसान के आगे।
हक़ीक़त क्या है मेरे रक्त की इस जान के आगे।।"

× × ×

इंजेक्शन देते ही बालकृष्ण उठ बैठा। उसके शरीर में रक्त संचार जारी हुआ। डाक्टर साहब ने बालकृष्ण के लिये पथ्य बतलाते हुए यह कहा, "गिरिवर को भी पौष्टिक पदार्थों तथा फलोंका कम से कम पन्द्रह दिन तक सेवन करना चाहिये, अन्यथा इन्हें भी यही बीमारी हो सकती है।"

"आप हमारी चिन्ता न करें डाक्टर साहब! चौथाई पौंड खून तो मेरे शरीर में प्रतिदिन बनता तथा शरीर से बाहर निकल जाता है बड़ी धीरता से कहा गिरिवर ने।"

श्रीकृष्ण बाबू के मुखमण्डल पर प्रसन्नता थी—लतिका ने हँसते-हँसते कहा, "प्यारे! ये दीन-दरिद्र देखने सुनने में छोटे होते हैं। जो लोग बड़े आदमी कहलाते हैं, वास्तव में वे बड़े नहीं हैं।"

श्रीकृष्ण बाबू हँस पड़े "बहुत ठीक, उन्होंने कहा, "और इसे मैं आज ही समझ पाया हूँ।"

लतिका ने पुनः कहा, "वे ही बड़े आदमी है जिनके हृदय विशाल हैं—जिनके हृदयों में उदारता है वही बड़े है। परन्तु जो ऐसे नहीं वे संसार के छोटे आदमी है। छोटों और बड़ों की इसके अतिरिक्त और कोई परिभाषा ही नहीं। धन्यवाद है गिरिवर के साहस तथा औदार्य की।"

पन्द्रह दिन व्यतीत हो गये।

बालकृष्ण पूर्ण स्वस्थ हो चला। स्वस्थ रहने में कितना आनन्द है। उसे अब ज्ञान हुआ। गिरिवर तो स्वस्थ था ही। रक्त निष्कासन के कारण उसे कुछ सुस्ती-सी अवश्य जान पड़ती थी परन्तु अब वह सुस्ती भी समाप्त हो चली थी।

सेठ बालकृष्ण के कारण उसे धनी शब्द की उपाधि मिली। उसने शहर में ही एक कोठी खरीद ली कपड़े की दूकान खोल दी तथा अपनी माँ, लाड़ली एव लीला के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

लाडली का शुभ विवाह बालकृष्ण के साथ सम्पन्न हुआ। इसमें भाग लेने वाले नगर के प्रायः सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति थे।

दूसरे ही दिन—

स्थानीय देशोद्धारक समिति के दैनिक पत्र में सबने पढ़ा—

विवाह करते समय ड्रामा खेलने की प्रथा को दूर हटा निम्नांकित सज्जनों का शुभ विवाह बड़े ही समारोह से सम्पन्न हुआ। बालकृष्ण लाड़ली विवाह के अतिरिक्त अन्य विवाह तो पहले ही हो चुके थे परन्तु परिस्थिति विशेष के कारण उनका प्रकाशन उचित अवसर पर न हो सका। पाठक इसे ध्यान में न लायेंगे, ऐसी ही आशा है।

१—स्थानीय कोर्ट इन्सपेक्टर श्रीमान् नरेन्द्रबाबू बी. ए. एल-एल बी. का विवाह स्थानीय पीरगंज म्यूनिसिपल प्राइमरी पाठशाला की सहायक श्रीमती लतिका देवी के साथ।

२—रायबहादुर सेठ श्रीकृष्ण बाबू का उक्त इन्सपेक्टर साहब की पुत्री श्रीमती कान्तिदेवी के साथ।

३—स्वदेशी वस्त्रालय नामक दूकान के अध्यक्ष श्रीमान् बाबू गिरिवर जी का परम सौभाग्यवती श्री अदलू आत्मजा लीलादेवी के साथ और उक्त उसके सुपुत्र श्रीमान् बाबू बालकृष्णजी का गिरिवर जी की लाड़ली बहन श्रीमती लाड़लीदेवी के साथ।

धन्य है उन समाज सुधारकों को जिन्होंने धार्मिक रूढ़ियों को लात मारकर समाज के सामने एक आदर्श उपस्थित किया।

धन्य है उन पतितों को जिन्होंने नारकीय जीवन व्यतीत करते हुए भी अन्त में अपना जीवन सफल बनाकर समाज के आन्तरिक चक्षुओं में नई शक्ति का सञ्चार कराया।

—समाप्त—